# सन्त कवि
# आचार्य श्री जयमल्ल
# व्यक्तित्व और कृतित्व

— उषा बाफना

# कवि आचार्य श्री जयमल्ल

## व्यक्तित्व और कृतित्व

(एम० ए० 1970-71 परीक्षा के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध)

निर्देशक
डॉ० नरेन्द्र भानावत
एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रस्तुतकर्त्री
श्रीमती उषा बापना
एम० ए०

प्रकाशक
श्री जयध्वज प्रकाशन समिति,
मद्रास-६

पुस्तक
सतकवि आचार्य श्री जयमल्ल
व्यक्तित्व और कृतित्व

●

लेखिका
श्रीमती उषा बापना एम ए

●

प्रकाशक
श्री जयध्वज प्रकाशन समिति
४६, अजीज मुल्क, २ स्ट्रीट, मद्रास-६

●

प्रथम आवृत्ति
फाल्गुन, वि० स० २०२९
मार्च १९७३

●

मूल्य सात रुपये

●

मुद्रक
राष्ट्रीय आर्ट प्रिंटर्स,
मोतीलाल नेहरू रोड, आगरा-३

# समर्पण

●

जिनकी मधुर-प्रेरणा

एव

बहुविध मार्गदर्शन प्राप्तकर

मैं अपने इस प्रयत्न मे सफल हो सकी,

उन

आचार्य श्री जयमल्लजी की परम्परा के प्रतिनिधि

कवि एव साहित्य-मर्मज्ञ

मुनिश्री मिश्रीमल जी 'मधुकर'

की

सेवा मे सविनय

—उषा बापना

# प्रकाशकीय निवेदन

चातुर्मास काल मे जब खजवाणा विराजित परमपूज्य गुरुदेव आगमप्रेमी स्वामीजी श्री जीतमलजी महाराज, आगम व्याख्याता मुनि श्री लालचन्द्रजी महाराज (श्रमणलाल) सिद्धान्तशास्त्री पार्श्वचन्द्र जी महाराज और विद्यार्थी श्री सुरेन्द्रमुनिजी महाराज के दर्शनार्थ गया, तब मुझे यह जानकर अतीव हर्ष हुआ कि श्री मज्जैनाचार्य प्रात स्मरणीय पूज्य श्री जयमल्लजी महाराज साहब के विषय मे एक विद्वत्तापूर्ण एव अन्वेषणात्मक ग्रथ तैयार हुआ है।

कुचेरा विराजमान वयोवृद्ध श्रमण सघ के महास्थविर स्वामी जी रावतमल जी महाराज साहब एव प्रसन्नहृदयी सेवाभावी मुनि श्री शुभचन्द्रजी महाराज के सान्निध्य मे नवदीक्षित विद्याप्रेमी श्री नूतन मुनिजी म० (भूतपूर्व वैरागी डालमचन्द्र बैंगानी) की भागवती दीक्षा थी, उस प्रसग पर उपर्युक्त गुरुदेव स्वामीजी श्री को उपप्रवर्तक स्वामीजी श्री ब्रजलालजी म० सा० पडित मुनि श्री मिश्रीमलजी म० सा० (मधुकर) एव विद्यार्थी नवदीक्षित मुनि श्री विनय कुमार जी म० से ऊपर की बात का पता लगा था।

"सत कवि आचार्य श्री जयमल्ल व्यक्तित्व और कृतित्व" नाम का वह विद्वत्तापूर्ण अन्वेषणात्मक ग्रथ मगवाया गया और चातुर्मास के शान्तिपूर्ण समय मे गुरुदेव स्वामीजी ने उसे अथ से इति तक सूक्ष्म-दृष्टि से अवलोकन किया। ग्रथ का जहाँ तक भाव-भाषा ओर वस्तु को प्रस्तुत करने के लिये साज-सज्जा से सम्बन्ध ह यह अजोड है। आगमिक, ऐतिहासिक एव पारम्परिक इसमे जो प्रसगोपात्त उद्धरण दिये गये हे वे लेखिका ने अपने अल्पात्यल्प साधनो से प्राप्त किये ह तथापि वे हे प्रामाणिक । छद्मस्थ का ज्ञान अन्ततोगत्वा क्षायोपशमिक हे अतएव जहाँ कही भी कुछ कमी जानने मे आई उसका सशोधन एव परिवर्द्धन गुरुदेव श्री के द्वारा हो गया है।

उषा श्रीश्रीमाल किन्तु वर्तमान मे बाफणा जो कि इस गवेषणापूर्ण निबन्ध की लेखिका ह। उसके विषय मे मुझे कोई जानकारी नही हे फिरभी सरलतापूर्वक मानना पडेगा कि उसने यह महत्वपूर्ण ग्रथ को लिखकर अपने आपको तो आध्यात्मिकता की दृष्टि से लाभान्वित किया ही हे किन्तु उस महान आत्मा के प्रति श्रद्धा रखनेवाले अनेकानेक महानुभावो पर अनन्त उपकार भी किया है। श्रीमती उषा बाफना के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की

अभिवृद्धि होती रहे ऐसी शुभ कामना करता हूँ। लेखिका बहन ऐसे शुभ कार्यों मे प्रोत्साहित होती रहे इस दृष्टि से सस्था की ओर से उन्हे एक सहस्र रुपयो का पुरस्कार प्रदान करने का निश्चय भी किया है।

एम० ए०, पी० एच० डी० करके निबन्ध लिखनेवाले व्यक्ति जो लिखे अथवा सम्पादित करे वह सब प्रामाणिक ही लिखते है यह कोई ऐकान्तिक सत्य नही है। लिखने का अभिप्राय यह है कि मेरे पास एक मित्र का कुछ दिनो के पूर्व एक पत्र आया है, जिसमे उसने मेरा ध्यान "क्षमामूर्ति भूधर" की ओर खीचा है। यह पॉकेट साइज छोटा-मा ट्रेक्ट प्रोफेसर डाक्टर मनमोहन शर्मा एम० ए०, पी-एच० डी० आनस के द्वारा सम्पादित है। जो प्रवर्तक मरुधर केसरी पडितरत्नमुनिश्री मिश्रीमल जी महाराज साहब की ओर से उनके पिछले ब्यावर के सवत् २०२८ के चौमासे मे प्रकाशित है—उसे लगभग एक साल ही हो पाया है। मुश्किल से सौ पेज का होगा, उसमे दश बाते शकास्पद है। एक सामान्य व्यापारीवर्ग के व्यक्ति के खयाल मे इतनी बाते आ जाती है तो ऐसी हालत मे एक अच्छे सुशिक्षित विचारक के सामने कितनी बाते मिल सकती है ? जिसकी कोई कल्पना भी नही।

इस पर मुझे लिखने को बाध्य होना पडा है कि हमारी जयध्वज प्रकाशन समिति की ओर से प्रकाशित "जयध्वज" ग्रथराज के लेखक श्रीमान गुलाबचन्द्र नानचन्द सेठ इतने पढे लिखे न होते हुए भी उन्होने कम से कम एक हजार पृष्ठो का विशालकाय जयध्वज (श्री मज्जैनाचाय पूज्य श्री जयमल्लजी म का जीवन चरित्र) लिखा। जिसे आज प्रसिद्धि मे आये तीन साल से भी अधिक का समय हो गया है, किन्तु बडी प्रसन्नता की बात है कि मेरे पास उसके विषय मे ऐसा एक भी पत्र नही आया है। मै अपने पाठको को इस विषय मे ज्यादा दूर ले जाना नही चाहता मुझे तो जो वास्तविक लगा वह बताया है।

इस "सत कवि आचार्य जयमल्ल व्यक्तित्व और कृतित्व" ग्रथ के प्रकाशन मे अनेक व्यक्तियो का आभार मानना परमावश्यक मानता हूँ फिर भी प०रत्न मुनिश्रीमिश्रीमल जी म (मधुकर) को शतश अभिनन्दन देकर सन्तोष करता हूँ कि जिन्होने गुरुदेव स्वामी जी म सा को इस ग्रथ की बात की जिससे आगे बढते-बढते मुझे अपनी "जयध्वज ग्रथ प्रकाशन समिति, मद्रास" के माध्यम से प्रकाशन कार्य द्वारा ग्रथ की और उसके पाठको की सेवा करने का स्वर्णावसर मिला।

निवेदक

**मत्री—श्री जयध्वज प्रकाशन समिति**

४९ अजीज मुल्क सेकिण्ड स्ट्रीट, मद्रास-६

# भूमिका

उन्नीसवीशती के प्रारम्भ मे पाश्चात्य विद्वानो द्वारा जो शोध कार्य आरम्भ हुआ, उससे आधुनिक जैन शोध की शुरुआत हुई। इस शोध की मुख्य प्रवृत्ति प्राचीन ग्रन्थो, विशेषत आगम ग्रन्थो के सम्पादन, उनके समीक्षात्मक अध्ययन (प्रस्तावना आदि के रूप मे) व हस्तलिखित ग्रन्थो के सूचीकरण तक ही सीमित रही। उससे प्रेरित होकर इस दिशा मे हमारे यहाँ काफी कार्य हुआ, फिर भी यह विशाल जैनवाङ्मय को देखते हुए अत्यल्प ही है। अब समय आ गया है कि हमे जैन-शोध की दिशाएँ विस्तृत करनी है और उनमे समसामयिक जीवनधारा को प्रेरणा देनेवाले मूल्य-सूत्र ढूँढने है।

किसी भी विषय के शोध के लिए उसकी प्रामाणिक आधारभूत सामग्री का विशेष महत्त्व है। जैन-शोध की अधिकाश सामग्री हस्तलिखित ग्रन्थ भडारो, मन्दिरो, खडहरो और अभिलेखो मे बिखरी पडी है। इन सब के सर्वेक्षण, सग्रह, सूचीकरण और परिचय प्रकाशन के कार्य को सर्वोपरि महत्त्व दिया जाकर जैन-शोध करने वाले विद्वानो और शोधार्थियो के लिए 'रा मटेरियल' के रूप मे इसका प्रस्तुत किया जाना बहुत आवश्यक है। यदि हम यह कार्य सम्पादित करने मे प्रयत्नशील हो सके तो जैन-शोध कार्य लोकप्रिय ही नही अधिक गति-शील भी हो सकेगा।

जैन-शोध की प्रवृत्तियाँ अब तक विशेष रूप से धर्म, दर्शन और साहित्य तक ही मुख्यत सीमित रही हैं। हमे उन्हे धर्म के क्षेत्र विशेष से बाहर निकाल कर मानव सस्कृति के व्यापक परिवेश मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमे जैनवाङ्मय मे बिखरे पडे इतिहास, राज-नीति, लोक साहित्य, धर्म, दर्शन, भूगोल, खगोल, गणित, ज्योतिष कला, पुरातत्त्व, विज्ञान, भाषा, आयुर्वेद, काव्य, शास्त्र, नाटक आदि विभिन्न सास्कृतिक तत्त्वो को टटोलना है और उन्हे समसामयिक जीवन-प्रवाह मे रखकर उनकी मूल्यगत समीक्षा करनी है। दूसरे शब्दो मे हमे जैनवाङ्मय के सामाजिक-सास्कृतिक अध्ययन की ओर विशेष ध्यान देना है।

जैनधर्म लोकधर्म है। वह लोकभूमि पर ही प्रतिष्ठित हुआ है। उसने

वगभेद, जातिभेद, ऊँच नीच सबका विरोध कर लोकभाव को ही पुष्ट किया है। जैन विद्या के अध्ययन मे हमारी दृष्टि इस लोकतत्त्व पर टिकी रहनी चाहिये। यह लोकतत्त्व सब मे रमा हुआ है, क्या भाषा, क्या अनुभूति, क्या कथानक, क्या काव्य-रूप, क्या रचनाशैली। इस लोकतत्त्व के माध्यम से ही हम उन सास्कृतिक तत्त्वो को पकड सकेगे जो देश की अखण्डता व एकता के अवबोधक है और जिन्होने मध्ययुगीन भक्ति काव्य तथा सतपरम्परा को प्रभावित किया है।

जैनधम व दर्शन की वैचारिक क्राति के इतिहास मे निर्णायक व प्रभावशाली भूमिका रही है। उसने भारतीय साहित्य ओर साधना को काफी दूर तक प्रभावित किया है। जन-जीवन को स्वाश्रयी और स्वस्थ बनाने मे उसका विशेप हाथ रहा है। वे प्रभाव वर्तमान जीवन को भी शक्ति और स्फूर्ति दे रहे है। अपने शोध मे हमे इस बात पर ध्यान रखना है कि जैन विद्या का सम्बन्ध केवल अतीत और व्यतीत आदर्शों से ही नही है वरन् वर्तमान जीवन और व्यवहार से भी है। हमे उन मूल्यो की खोज करनी है जो आज भी पूर्णता और सार्थकता के लिये अपरिहाय है।

मानव धर्म के विकासात्मक अध्ययन मे जैनधर्म के योगदान और उसके रोल की समीक्षा भी हमे करनी है। अब तक हम जैनधर्म को साम्प्रदायिक व्यामोह से मुक्त नही करा सके। इस कारण उसके अध्ययन का व्यापक आधार नही बन पाया है। हमे पूरे भारतीय धर्म, दर्शन और साहित्य के इतिहास मे उसकी आकृति (Image) उभारनी है। यह कार्य दो दिशाओ से करना होगा—एक तो अलग-अलग प्रान्तो या अचलो मे पडे जैन-सस्कृति के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, नैतिक, कलात्मक आदि विभिन्न प्रभावो की वस्तुनिष्ठ समीक्षा करते हुए उसकी समग्रता का मूल्याकन कर और दूसरे समग्र जीवन-दृष्टि मे अलग-अलग स्रोत से आकर मिलने वाले प्रभाव-तत्त्वो के सन्दर्भ मे जैन-तत्त्वो की स्थिति का मूल्याकन कर। पहली दिशा हमे अनेकता से एकता की ओर ले जाती है और दूसरी दिशा अगी से अग की ओर। दोनो रास्ते अलग-अलग होकर भी एक ही गन्तव्य पर पहुँचते है।

जैन-शोध मे हमे तुलनात्मक शोध-दृष्टि विकसित करनी है। विभिन्न भारतीय भापाओ मे विशेपकर दक्षिण भारत की भापाओ मे जो जैन साहित्य रचा गया है, उसकी प्रवृत्तियो, प्रेरणा स्रोतो एव प्रभावो को उत्तर भारत की भापाओ के साथ रखकर देखने की आवश्यकता है। मध्ययुगीन साहित्य मे

जो विभिन्न प्रवृत्तियाँ और काव्यशैलियाँ विकसित हुई उनके मूल मे सस्कृत की अपेक्षा प्राकृत एव अपभ्र श साहित्य ही मुख्य प्रेरणा-स्रोत रहा है। अत प्राकृत, अपभ्र श साहित्य के अध्ययन को भारतीय साहित्य मे विकासात्मक अध्ययन की जोड मे रखकर देखने की आवश्यक बढ गई है।

आचार्य पडित रामचन्द्र शुक्ल ने जैन-साहित्य को सम्प्रदाय परक साहित्य मानकर उसका उचित मूल्याकन नही किया, पर बाद मे डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० रामसिह तोमर आदि विद्वानो ने जैन-साहित्य को उचित महत्त्व देकर मध्ययुगीन सत-परम्परा, प्रेमाख्यानक परम्परा आदि के विकास मे पूर्ववर्ती जैन साहित्य की प्रभावकारी भूमिका को स्वीकार किया तब से विश्वविद्यालयो मे जैन-साहित्य की शोध प्रवृत्ति बढी है। समयसुन्दर, जिनहर्ष, बनारसीदास, भूधरदास जैसे महान् कवियो के व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोध-प्रबन्ध लिखे गये है।

जैनसाहित्य के अध्ययन-अनुशीलन मे स्थानकवासी परम्परा के कवियो पर अब तक विद्वानो का पर्याप्त ध्यान नही गया है। और न इस परम्परा को लेकर शोधकार्य मे प्रवृत्ति बढी है। पडित मुनिश्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज ने अवश्य स्थानकवासी परम्परा के अनेक कवियो पर कई सक्षिप्त परिचयात्मक लेख जयपुर से प्रकाशित होने वाली जिनवाणी मासिक पत्रिका मे प्रकाशित करवाये तब मेरा ध्यान स्थानकवासी परम्परा की साहित्यिक दाय पर गया और मैने अपनी एम० ए० की दो छात्राओ श्रीमती उपा बापना और कुमारी मधु माथुर को क्रमश आचार्य श्री जयमलजी मा० सा० और श्री तिलोक ऋषिजी महाराज के व्यक्तित्व और कृतित्व पर लघु शोधप्रबन्ध प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया। मुझे प्रसन्नता है कि उनमे से प्रथम ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

श्रीमती उपा बापना ने मेरे निर्देशन मे अपने एम० ए० (हिन्दी) के लघु शोधप्रबन्ध के रूप मे बडे मनोयोग और अध्यवसाय के साथ इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। आधार सामग्री के रूप मे उसके समक्ष प० मुनिश्री मधुकरजी द्वारा सम्पादित 'जयवाणी' पुस्तिका थी। आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान-भण्डार, शोध प्रतिष्ठान, जयपुर मे सग्रहित हस्तलिखित ग्रन्थो से भी लेखिका ने लाभ उठाया।

यह ग्रन्थ आचार्य श्री जयमलजी महाराज सा० की परम्परा के वर्तमान मत पडित मुनिश्री मधुकरजी महाराज सा० को समर्पित कर लेखिका ने

उनके प्रति जो श्रद्धा और निष्ठा व्यक्त की है, वह स्तुत्य है। मुनिश्री जैन-साहित्य के निर्माण, उन्नयन और विकास मे मनोयोगपूर्वक लगे हुए हैं। इस ग्रन्थ के प्रणयन और प्रकाशन के मूल मे भी मुनिश्री की विशेष प्रेरणा रही है। 'जय ध्वज' प्रकाशन समिति, मद्रास ने इस ग्रन्थ का प्रकाशन कर हिन्दी ससार को आचाय श्री जयमल जी महाराज जैसे महान् सत कवि से परिचित कराने मे जो पहल की इसके लिए वह धन्यवाद की पात्र है। समिति केवल ग्रन्थ का प्रकाशन करके ही नही रह गई वरन् उसने एक हजार एक रुपए का पुरस्कार प्रदान कर लेखिका को सम्मानित भी किया है। इस सम्मान से न केवल लेखिका का गौरव बढा है वरन् इससे इस क्षेत्र मे काय करने वाले शोधार्थियो को विशेष बल और प्रोत्साहन भी मिलेगा। समिति की यह उदार मनोवृत्ति प्रशसनीय है। आशा है आचार्य श्री जयमलजी महाराज सा० की परम्परा मे हुए आचार्य श्री रायचन्द्रजी महाराज, आ० श्री आसकरणजी महाराज जैसे महान् सत कवियो की साहित्यिक रचनाओ के अध्ययन अनुशीलन मे भी विशेष सहायक बनेगी।

ग्रन्थ के मुद्रण और साज-सज्जा मे जैन-दर्शन के प्रखर विद्वान श्री श्रीचन्दजी साहब सुराणा 'सरस' ने जो रुचि प्रकट कर सहयोग दिया उसी का यह परिणाम है कि यह ग्रन्थ अपने सुन्दर रूप मे पाठको के समक्ष आ सका। मुझे पूरा विश्वास है, इस ग्रन्थ के प्रकाशन से हिन्दी सत काव्य-परम्परा मे एक नई कडी जुडेगी।

डा० नरेन्द्र भानावत
हिन्दी प्राध्यापक, रा० वि० विद्यालय,
मानद निदेशक,
आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार,
शोध-प्रतिष्ठान, जयपुर

# प्राक्कथन

साहित्य का स्वभाव विषमता मे समता स्थापित करना है। यह समता स्थापन का कार्य दुरूह है। इसके लिए साहित्यकार को कठिन तपस्या करनी पडती है। दीपक की भॉति तिल-तिल कर जलना पडता है। यही जलन एव तडप सच्चे साहित्य की कसौटी है, जो साहित्यकार साधक बन जाता है उसका साहित्य ही विरोधी भावो का मेल करा सकता है और अन्तत "सहितस्य भाव साहित्यम्" की ध्वनि को आत्मसात् कर लोक-मगल भावना का वाहक बन सकता है। कहना न होगा कि जैन-साहित्य व जैन-साहित्यकार इस मगल भावना के सच्चे वाहक और साधक है। वे जो कुछ कहते है पहले जीवन मे उसे उतारते है। उनके जीवन की प्रयोगशाला मे ही विभिन्न भाव मुक्ता आलोक ग्रहण करते है, आकार धारण करते है और तब अपने तेज से, प्रकाश मे दूसरो को प्रतिभासित और दीपित करते है।

बहुत समय तक जैन साहित्य धार्मिक कहा जाकर उपेक्षित रहा, किन्तु सत्य पर पर्दा अधिक समय तक नही रह सका और आज हिन्दी साहित्य के इतिहास मे आदिकाल नाम का तथाकथित काल बिना जैन साहित्य का आधार लिए टिक नही सकता। यह ठीक है कि इसमे जैन-धर्म के सिद्धान्तो के आधार पर जीवन बिताने का उपदेश दिया गया है, पर इसी कारण इनका महत्व कम नही हो जाता जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता रही है—"धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्यिक कोटि से अलग नही की जा सकती।" यदि ऐसा समझा जाने लगे तो तुलसीदास का "रामचरितमानस" भी साहित्य क्षेत्र मे अविवेच्य हो जायगा।[1] इस युग के साहित्य की प्रधान प्रेरणा धर्मसाधना ही रही है और यह कहना भी अत्युक्तिपूर्ण नही होगा कि उस काल की आज जो थोडी बहुत पुस्तके अवशिष्ट रही है उनके सुरक्षित रहने का कारण प्रधान रूप से धर्म-बुद्धि ही रही है।

---

[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दीसाहित्य का आदिकाल, पृ० ११

जैन साहित्य ने हिन्दी साहित्य को कई रूपो मे अपनी देन दी हे । यह दन सीधी न आकर सस्कृत प्राकृत अपभ्र श से होती हुई हिन्दी मे आई। इस देन को स्थूलत दा रूपो मे बाँट सकते ह। (१) सरक्षणात्मक व (२) सर्जनात्मक। सरक्षणात्मक रूप मे जैन विद्वानो ने हिन्दी के विपुल और विविध साहित्य की रक्षा की, उसे काल की आँधी से बचाया। सर्जनात्मक रूप मे इसने विचार एव शिल्प दोनो क्षेत्रो मे नई दृष्टि और स्वर दिया।[1] विचार क्षेत्र मे मानवतावादी दृष्टिकोण राष्ट्रीय भूमिका ओर आध्यात्म भावना को विशेप प्रश्रय दिया। शिल्प क्षेत्र मे कई नये काव्य रूपो—चचरी, सज्झाय, फागु, वेलि, रास आदि को जन्म दिया। भापा एव छन्द को जन साधारण के निकट ला उतारा।

आदिकाल के प्रमुख जैन कवि उद्योतन सूरि, स्वयभू पुष्पदत्त, योगीन्दु, हरिभद्र सूरि, रामसिंह, धनपाल, कनकामर मुनि, शालिभद्रसूरि वज्रसेन सूरि आदि हैं। इसके वाद मध्य युग मे अनेक जैन कवि हुए जिनमे प्रमुख कवि सर्वश्री समयसुन्दर, जिनहर्ष, वीर विजय सकलकीर्ति बनारसीदास, भूधरदास, वृन्दावन, द्यानतराय, धर्मवर्द्धन, ज्ञानसागर आदि उल्लेखनीय है। इन जैन कवियो की परम्परा आज तक चली आ रही है।

जैन साहित्य की महत्ता यद्यपि अब सभी विद्वान स्वीकार करने लगे है तथापि कई ऐसे कवि है, जिनकी कृतियाँ कपाटो मे बन्द पडी है, उनके पुनरुद्धार की आज अत्यन्त आवश्यकता है। आलोच्य कवि जयमल्ल जी भी ऐसे ही सन्त हे जिनके कवित्व की ओर हिन्दी विद्वानो का ध्यान नही गया है। इस दिशा मे किये गये दो प्रयत्न विशेप महत्वपूर्ण ह। प्रथम मुनि श्री मिश्रीमल्ल जी 'मधुकर का पयत्न जिन्होने जयमल्ल जी की कई बिखरी हुई रचनाओ को 'जयवाणी'[2] नाम से सकलित किया। दूसरा प्रयत्न डा० नरेन्द्र भानावत का है जिन्होने मुनि श्री हजारीमल स्मृतिग्रथ मे 'आचार्य जयमल्ल जी व्यक्तित्व एव कृतित्व' विपय पर विस्तृत निवन्ध लिखकर उनके कवि रूप का मूल्याकन किया।

जॅन होने के कारण मेरी रुचि जैन साहित्य की ओर प्रारम्भ से ही रही है। गत ग्रीष्मावकास मे जब एक दिन हजारीमल स्मृति ग्रन्थ मे प्रकाशित डा० भानावत के 'आचार्य जयमल्लजी व्यक्तित्व एव कृतित्व' निवन्ध पर मेरी

---

१ डा० नरेन्द्र भानावत—साहित्य के त्रिकोण, पृ० २०७

२ इसका प्रकाशन सन्मति ज्ञानपीठ आगरा से हुआ है।

दृष्टि पडी तो इस सम्बन्ध मे आगे और अध्ययन करने की मेरी इच्छा बलवती हुई ।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध पॉच अध्यायो मे विभक्त किया गया है । प्रथम अध्याय सत कवि जयमल्लजी के जीवन और व्यक्तित्व से सम्बन्धित है । इसमे अन्तर्साक्ष्य एव बहिर्साक्ष्य के आधार पर उनके जन्मकाल, जन्मस्थान, शिक्षा, विवाह, दीक्षा, साधना-काल, विहार क्षेत्र, शिष्य सम्पदा, आचार्य परम्परा, जन सम्पर्क एव धर्मप्रचार स्वर्गवास और व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है ।

द्वितीय अध्याय उनके कृतित्व से सम्बन्धित है । इसमे जयमल्लजी की समस्त रचनाओ को चार विभागो—स्तुतिपरक, उपदेशपरक, चरितपरक एव प्रकीर्णक मे विभक्त कर उनका सामान्य परिचय दिया गया है ।

तृतीय अध्याय मे जयमल्ल जी की रचनाओ का साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इस अध्ययन को पॉच वर्गो मे विभक्त किया गया है— स्तुतिपरक, उपदेशपरक, चरित्रपरक, प्रकीर्णक एव कला-विधान । कला-विधान मे कवि की भाषा शब्द प्रयोग, पारिभाषिक शब्दावली, अलकार विधान शैली विधान एव छन्द विधान पर विचार किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय मे कवि के दार्शनिक विचारो को आत्मा, परमात्मा, जगत्, साधना, पूर्वजन्म एव कर्मवाद और मुक्ति शीर्षको मे विभाजित कर समझाने की चेष्टा की गई है ।

पचम अध्याय मे जयमल्ल जी की रचनाओ के आधार पर तत्कालीन सास्कृतिक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया गया है ।

ग्रन्थ के अन्त मे दो परिशिष्ट दिए गए है । प्रथम परिशिष्ट मे जयमल्ल जी की दो अप्रकाशित रचनाओ—(१) अम्बड सन्यासी की ढाल एव (२) मृगालोढा की ढाल-का मूल पाठ दिया गया है । द्वितीय परिशिष्ट सहायक ग्रन्थो की सूची से सम्बन्धित है । ग्रथ को अधिक प्रामाणिक बनाने की दृष्टि से यथास्थान अप्रकाशित रचनाओ के आदि व अन्त की दो दो फोटो प्रतियाँ भी दी गई है ।

यह लघु शोध-प्रबन्ध राजस्थान विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक श्रद्धेय गुरुदेव डा० नरेन्द्र भानावत के निर्देशन मे प्रस्तुत किया गया है । उनकी सतत प्रेरणा, मार्गदर्शन, स्नेह और सौजन्य ने ही मेरा मार्गदर्शन किया

है अन्यथा शास्त्रीय लिपि के इन प्राचीन ग्रन्थो के इस शोध प्रयत्न मे मेरी पहुँच नगण्य रहती। मै उनकी बहुत अनुगृहीत हूँ और शब्दो मे कृतज्ञता प्रकट करने मे स्वय को असमर्थ पाती हूँ।

श्रीमती शान्ता भानावत ने मेरे अध्ययन मे आनेवाली बाधाओ को हल कर सतत प्रेरणा दी जिनका मै हृदय से आभार स्वीकार करती हूँ।

श्रद्धेय गुरुवर डा० सरनाम सिह जी शर्मा "अरुण" का भी आभार स्वीकार करती हूँ जिनकी प्रेरणा और अनुमति से मैं इस कार्य की ओर प्रवृत्त हुई।

आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भडार, जयपुर के व्यवस्थापक श्री सोहनमल कोठारी और कार्यकर्ता श्री गजसिहजी राठौर व श्री मोतीलालजी गाँधी भी धन्यवाद के पात्र है जिनकी कृपा से मुझे अध्ययन के लिए अलभ्य हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ व अन्य सहायक पुस्तके उपलब्ध हो सकी।

सौभाग्य से आलोच्य कवि जयमल्ल जी महाराज की परम्परा के यशस्वी सन्त मुनि श्री मिश्रीमल जी 'मधुकर' का चातुर्मास इस वर्ष जयपुर ही मे हुआ। चातुर्मास काल मे उन्होने समय-समय पर जयवाणी के कई स्थलो को स्पष्ट कर मेरे माग को सरल बना दिया। इस कृपा के लिए मै हृदय के गहन स्थल से उनके प्रति आभार प्रकट करती हूँ।

यदि इस प्रबन्ध के द्वारा अन्य शोधकर्मी छात्र अज्ञात जैन सन्त साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन की ओर किचित भी प्रवृत्त हुए तो मै अपने श्रम को साथक समझूगी।

**—उषा बापना**

# विषय-सूची

## प्रथम अध्याय



## द्वितीय अध्याय



## तृतीय अध्याय

## चतुर्थ अध्याय



## पचम अध्याय

# जीवन और व्यक्तित्व

प्रथम अध्याय

# जीवन और व्यक्तित्व

## जीवन

### जन्म

कविवर जयमल्लजी का जन्म सवत् १७६५ मे भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी को[1] जोधपुर क्षेत्र मे मेडता से जैतारण की ओर जानेवाली सडक पर अवस्थित लाविया नामक ग्राम मे हुआ । उनके पिता का नाम मोहनलाल जी एव माता का नाम महिमादेवी था[2] । ये समदडिया-महता-गोत्रीय बीसा ओसवाल थे । इनके पिता कामदार थे । इनके बडे भाई का नाम रिडमल था । २२ वर्ष की अवस्था मे इनका विवाह रीवा निवासी शिवकरण जी मूथा की सुपुत्री लक्ष्मीदेवी के साथ हुआ ।[3]

### दीक्षा प्रसग

विवाहोपरान्त जयमल्ल जी व्यापारार्थ मेडता आये[4] । वे वणिक बनकर कर्मक्षेत्र मे उतरे अवश्य, पर व्यापार उनका लक्ष्य नही था । धर्म की ओर रुझान होने पर भी वे उसके पीछे दिवाने नही बने । यह सयोग ही था कि वे अपने व्यावसायिक मित्रो के साथ सौदा करने आये अवश्य, पर बाजार बन्द

---

१ पूज्य गुणमाला श्री चौथमलजी महाराज, पृ० ८

२ जम्बूदीपना भरत मे रे लाल, लाविया गाम श्रीकार ।
मुहता मोहनदास जी रे लाल, महिमादे घर नार ॥

—पूज्य आसकरण जी महाराज व्याख्यान नव-रत्नमाला पृ १

३ मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ डा० नरेन्द्र भानावत, का निबन्ध पृ० १३८

४ मेडता नगर पधारिया रे लाल, करवा वणिज व्यापार ।

—पूज्य आसकरण जी महाराज व्याख्यान नव-रत्नमाला पृ० २

देखकर अनायास ही स्थानकवासी परम्परा के आचार्य श्री धरमदास जी[1] की शाखा के प्रशासक पूज्यवर भूधर जी महाराज[2] की सेवा मे उपस्थित हो गये। भूधर जी महाराज अपने समय के अच्छे व्याख्याता एव धर्म प्रचारक थे। वे अपने प्रवचन मे ब्रह्मचर्य-व्रत की दृढता और महत्ता पर सेठ सुदर्शन का जीवन-प्रसग गा-गाकर सुना रहे थे। यद्यपि जयमल्लजी प्रथम बार ही मुनिराजो की धर्म-सभा मे पहुँचे थे तथापि उनके हृदय मे सयम ग्रहण करने की भावना प्रबल रूप से जाग्रत हो उठी। पूर्ण चन्द्र की ज्योत्स्ना से उद्वेलित होकर समुद्र जिस प्रकार हिलोरे लेने लगता है उसी प्रकार उनका मन सासारिक विषय-वासना से मुक्ति पाने के लिए व्यग्र हो उठा। इसीलिए तो उन्होने वही बैठे-बैठे ब्रह्मचर्य व्रत अगीकार कर लिया। और सयम ग्रहण किये बिना मेडता से बाहर नही निकलने की प्रतिज्ञा भी धारण कर ली।

विवाह के कुछ समय बाद ही इनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी अपने पीहर चली गई थी। उसका पुनरागमन होने वाला ही था कि जयमल्लजी साधु हो गये। जयमल्लजी के प्रति उनके माता-पिता व बडे भाई के मन मे अगाध ममता थी, पर सब व्यर्थ। नवपरिणीता वधू का ज्वारभाटे की तरह उफनता प्यार भी उनके निश्चय को नही रोक सका। सवत् १७८७ की मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया के दिन[3] उन्होने मेडता मे श्रमण-जीवन मे प्रवेश किया[4]। विवाह

---

१ पूज्य धरमदास जी युगप्रधान आचार्य थे। इनका जन्म अहमदाबाद के पास सरखेज गाँव मे जीवन भाई पटेल के यहाँ सवत् १७०१ चैत्र शुक्ला एकादशी को हुआ। ये सवत् १७२७ मे आचार्य बने और अडतीस वर्ष तक धर्म प्रचार करने के बाद सन् १७५९ मे स्वर्गवासी हुए।

—जिनवाणी सितम्बर १९६०, पृ० २२८-२३२

२ भूधरजी अपने समय के बडे तपस्वी और प्रभावशाली आचार्य थे। इनका जन्म सोजत मे हुआ। इन्होने सवत् १७७३ मे पूज्य श्री धन्नाजी के पास दीक्षा ली और सवत् १८०४ मे इनका स्वर्गवास हुआ। इनके चार बडे शिष्य हुए जिनकी परम्पराएँ आज तक वर्तमान है।

३ पूज्य जयमल्ल गुणमाला (द्वितीय सस्करण) के अनुसार दीक्षा तिथि सवत् १७८८ की मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया भी मानी गई है।

४ हा रे साजन सवत् सत्तरे सतियासी थे, हा रे साजन लीनो सजम भार। जयमल्ल जी री दीक्षा मृगशिर वद बीजरी ॥ टेर ॥ १ ॥

—व्याख्यान नवरत्न माला, पृ० १२

के छह मास के बाद ही ये श्रमण बन गये। इनकी दीक्षा के उपरान्त इनकी पत्नी ने भी सयम ग्रहण कर लिया। सात दिनो के बाद ही विकरणिया गाँव मे इन्होने बडी दीक्षा अगीकार की[1]।

**साधना-काल**

श्रमण जीवन मे प्रवेश करते ही श्री जयमल्ल जी ने कठोर साधना आरम्भ कर दी। साधना मे ये वज्र की तरह कठोर थे। इनके विचारो मे प्रेम एव कर्तव्य का द्वन्द्व नही था। जीवन का एक ही लक्ष्य था आत्मकल्याण। श्रमण-जीवन मे प्रवेश करते ही इनकी एकान्तर तप[2] की आराधना आरम्भ हो गई। जो १६ वर्ष तक निर्बाध गति से चलती रही। इन्होने पाँच तिथियो[3] के प्रत्याख्यान भी कर लिए।

जयमल्लजी अध्यवसायी ही नही, अध्ययनशील भी थे। इनकी बुद्धि तीव्र एव स्मृति बडी जागरूक थी। दीक्षा लेने के बाद, स्वल्प समय मे ही इन्होने एक ही प्रहर मे पाँच शास्त्र[4] कठस्थ कर लिए थे[5]।

जयमल्ल जी धुन के पक्के थे। इनमे अपने गुरु के प्रति असीम श्रद्धा थी। जब भूधर जी स्वर्ग सिधारे तब इन्होने कभी नही लेटने की प्रतिज्ञा की[6]। इस सतत जागरूकता ने इन्हे अन्तर्मुखी बना दिया और इनकी अन्तर्दृष्टि ने काव्य का वह स्वरूप पाया जो "स्वान्त सुखाय" बनकर ही नही रहा वरन् "परान्त सुखाय" भी बना[7]।

---

१ वडी दीक्षा दिन सात मे रे लाल, बडवीखरणीया हेट ॥श्री॥

—वही, पृ० १३

२ एक दिन उपवास और एक दिन आहार के क्रम को एकान्तर-तप कहते है।

३ (१) द्वितीया (२) पचमी (३) अष्टमी (४) एकादशी (५) चतुर्दशी।

४ (१) कप्पिया (२) कप्पवडसिया (३) पुप्फिया (४) पुप्फचूलिया (५) वण्हिदसाओ।

५ पाच सूत्र तो एक पहर मे पढकर कण्ठा करियारे।

—व्याख्यान नवरत्न माला प १३

६ जिण दिन थी जयमल्ल जी किया पोढण का पच्चवखान।
वष पचास लो पालियो यो भीषम-व्रत गुणवान ॥

—वही, पृ० १५

७ मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, डा० नरेन्द्र भानावत का निबन्ध, १३६।

देखकर अनायास ही स्थानकवासी परम्परा के आचार्य श्री धरमदास जी[1] की शाखा के प्रशासक पूज्यवर भूधर जी महाराज[2] की सेवा मे उपस्थित हो गये। भूधर जी महाराज अपने समय के अच्छे व्याख्याता एव धर्म प्रचारक थे। वे अपने प्रवचन मे ब्रह्मचर्य-व्रत की दृढता और महत्ता पर सेठ सुदर्शन का जीवन-प्रसग गा-गाकर सुना रहे थे। यद्यपि जयमल्लजी प्रथम बार ही मुनिराजो की धर्म-सभा मे पहुँचे थे तथापि उनके हृदय मे सयम ग्रहण करने की भावना प्रबल रूप से जाग्रत हो उठी। पूर्ण चन्द्र की ज्योत्स्ना से उद्वेलित होकर समुद्र जिस प्रकार हिलोरे लेने लगता है उसी प्रकार उनका मन सासारिक विषय-वासना से मुक्ति पाने के लिए व्यग्र हो उठा। इसीलिए तो उन्होने वही बैठे-बैठे ब्रह्मचर्य व्रत अगीकार कर लिया। ओर सयम ग्रहण किये बिना मेडता से बाहर नही निकलने की प्रतिज्ञा भी धारण कर ली।

विवाह के कुछ समय बाद ही इनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी अपने पीहर चली गई थी। उसका पुनरागमन होने वाला ही था कि जयमल्लजी साधु हो गये। जयमल्लजी के प्रति उनके माता-पिता व बडे भाई के मन मे अगाध ममता थी, पर सब व्यर्थ। नवपरिणीता वधू का ज्वारभाटे की तरह उफनता प्यार भी उनके निश्चय को नही रोक सका। सवत् १७८७ की मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया के दिन[3] उन्होने मेडता मे श्रमण-जीवन मे प्रवेश किया[4]। विवाह

---

१ पूज्य धरमदास जी युगप्रधान आचार्य थे। इनका जन्म अहमदाबाद के पास सरखेज गाँव मे जीवन भाई पटेल के यहाँ सवत् १७०१ चैत्र शुक्ला एकादशी को हुआ। ये सवत् १७२७ मे आचार्य बने और अडतीस वर्ष तक धर्म प्रचार करने के बाद सन् १७५६ मे स्वर्गवासी हुए।

—जिनवाणी सितम्बर १९६०, पृ० २२८-२३२

२ भूधरजी अपने समय के बडे तपस्वी और प्रभावशाली आचार्य थे। इनका जन्म सोजत मे हुआ। इन्होने सवत् १७७३ मे पूज्य श्री धन्नाजी के पास दीक्षा ली और सवत् १८०४ मे इनका स्वर्गवास हुआ। इनके चार बडे शिष्य हुए जिनकी परम्पराएँ आज तक वर्तमान है।

३ पूज्य जयमल्ल गुणमाला (द्वितीय सस्करण) के अनुसार दीक्षा तिथि सवत् १७८८ की मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया भी मानी गई है।

४ हा रे साजन सवत् सत्तरे सतियासी ये, हा रे साजन लीनो सजम भार।
जयमल्ल जी री दीक्षा मृगशिर वद बीजरी ॥ टेर ॥ १ ॥

—व्याख्यान नवरत्न माला, पृ० १२

के छह मास के बाद ही ये श्रमण बन गये। इनकी दीक्षा के उपरान्त इनकी पत्नी ने भी सयम ग्रहण कर लिया। सात दिनो के बाद ही विकरणिया गाँव मे इन्होने बडी दीक्षा अगीकार की[1]।

### साधना-काल

श्रमण जीवन मे प्रवेश करते ही श्री जयमल्ल जी ने कठोर साधना आरम्भ कर दी। साधना मे ये वज्र की तरह कठोर थे। इनके विचारो मे प्रेम एव कर्तव्य का द्वन्द्व नही था। जीवन का एक ही लक्ष्य था आत्मकल्याण। श्रमण-जीवन मे प्रवेश करते ही इनकी एकान्तर तप[2] की आराधना आरम्भ हो गई। जो १६ वष तक निर्बाध गति से चलती रही। इन्होने पाँच तिथियो[3] के प्रत्याख्यान भी कर लिए।

जयमल्लजी अध्यवसायी ही नही, अध्ययनशील भी थे। इनकी बुद्धि तीव्र एव स्मृति बडी जागरूक थी। दीक्षा लेने के बाद, स्वल्प समय मे ही इन्होने एक ही प्रहर मे पाँच शास्त्र[4] कठस्थ कर लिए थे[5]।

जयमल्ल जी धुन के पक्के थे। इनमे अपने गुरु के प्रति असीम श्रद्धा थी। जब भूधर जी स्वर्ग सिधारे तब इन्होने कभी नही लेटने की प्रतिज्ञा की[6]। इस सतत जागरूकता ने इन्हे अन्तर्मुखी बना दिया और इनकी अन्तर्दृष्टि ने काव्य का वह स्वरूप पाया जो "स्वान्त सुखाय" बनकर ही नही रहा वरन् "परान्त सुखाय" भी बना[7]।

---

१ बडी दीक्षा दिन सात मे रे लाल, बडवीखरणीया हेट ॥श्री॥

—वही, पृ० १३

२ एक दिन उपवास और एक दिन आहार के क्रम को एकान्तर-तप कहते है।

३ (१) द्वितीया (२) पचमी (३) अष्टमी (४) एकादशी (५) चतुर्दशी।

४ (१) कप्पिया (२) कप्पवडसिया (३) पुप्फिया (४) पुप्फचूलिया (५) वण्हिदसाओ।

५ पाँच सूत्र तो एक पहर मे पढकर कण्ठा करियारे।

—व्याख्यान नवरत्न माला पृ १३

६ जिण दिन थी जयमल्ल जी किया पोढण का पच्चक्खान।
वर्ष पचास लो पालियो यो भीषम-व्रत गुणवान ॥

—वही, पृ० १५

७ मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रंथ डा० नरेन्द्र भानावत का निबन्ध, १३९।

सवत् १८०४ मे आसोज शुक्ला दसमी-शुक्रवार को भूधर जी का स्वर्गवास हुआ। तदनन्तर सवत् १८०५ मे अक्षय तृतीया को जोधपुर मे जयमल्लजी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। इस पद पर ये लगभग ४७ वर्ष तक रहे।

## विहार क्षेत्र

जैन सन्तो का वर्षावास के अतिरिक्त एक जगह ठहरने का विधान नही है। अत वे अन्यान्य ग्रामानुग्राम विचरण कर जन-जन को धर्मोपदेश देते रहते है। जयमल्लजी का विचरण-स्थल प्रमुखत राजस्थान रहा। राजस्थान के अतिरिक्त पजाब, आगरा, दिल्ली एव मालवा की ओर भी इन्होने विचरण किया। इनके वर्षावासो की तालिका इस प्रकार हे

**सोजत**

सवत् १७८८, १७९६, १८०३, १८०५, १८१९ व १८३२

**जालौर**

सवत् १७९१

**जोधपुर**

सवत् १७९३, १७९५, १७९७, १८००, १८०१, १८१०, १८१६, १८२०, १८२६, १८२९, १८३४, १८३६

**मेडता**

सवत् १७९२, १७९८, १८०२, १८०४, १८०७, १८२४ व १८२७

**किशनगढ**

सवत् १७९९, १८१५, १८२१, १८३० व १८३८

**बोरावड**

सवत् १८०८

**जैतारण**

सवत् १८०९

**पीपाड**

सवत् १८११, १८३५

**भीलवाडा**

सवत् १८१२

**उदयपुर**

सवत् १८१३

**अमर रायपुर**

सवत् १८१४

**बीकानेर**

सवत् १८१७, १८२३

**जयपुर**

सवत् १८१८

**शाहपुरा**

सवत् १८३१, १८३६

**पाली**

सवत् १८३३, १८३७

**नागौर**

सवत् १८६४, १८०६, १८२२, १८२५, १८२८, १८४०

सवत् १८४० से १८५२ तक (स्थिरवास के कारण)[1]।

शारीरिक अस्वस्थता के कारण अपने जीवन के अन्तिम वर्षों मे ये नागौर ही स्थिरवासी बनकर रहे।

**शिष्य-सम्पदा**

श्री जयमल्ल जी के शिष्यो की सख्या ५१ थी। पूज्य श्री रघुनाथ जी महाराज, श्री कुशल जी महाराज और श्री जैतसी जी महाराज आपके गुरु भ्राता थे। जयमल्लजी के बाद आचार्य पद का उत्तराधिकार इनके योग्यतम शिष्य मुनि श्री रायचन्द जी को मिला। अपने जीवन-काल मे स्वय इन्होने रायचन्द जी को आचार्य पद से विभूषित कर दिया था। ये भी जयमल्ल जी की तरह प्रतिभाशाली थे। जयमल्ल जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण इनकी आख्या पर ही इनके सम्प्रदाय का नामकरण हुआ जो "जयमल्ल सम्प्रदाय" के रूप मे आज तक प्रचलित है।

**आचार्य-परम्परा**

भारतवर्ष के सास्कृतिक क्रातिपूर्ण इतिहास मे पन्द्रहवी व सोलहवी शताब्दी का विशिष्ट महत्व रहा है। कबीर, नानक आदि सतो ने इस युग मे निर्गुण विचारधारा का प्रबलता से समर्थन किया और सगुणोपासक समाज, धर्म तथा पूजा के नाम पर फैले हुए अर्थहीन बाह्य आडम्बरो पर प्रहार कर जनमानस

---

1 "पूज्य गुणमाला" के द्वितीय-सस्करण के अनुसार।

को उद्‌बुद्ध किया। इसी युग मे लोकाशाह नामक क्रातिकारी पुरुप ने जन्म लिया, जिनकी ओर इतिहासकारो का ध्यान वहुत कम गया है। ये जैन(मूर्ति-पूजा विरोधी) सम्प्रदाय के आदि सस्थापक माने जाते है। अद्यावधि उनके जीवन और साहित्य के सम्बन्ध मे वहुत कम जानकारी प्राप्त है, जो कुछ जानकारी प्राप्त हुई है वह भी अधिकाशत विरोधियो द्वारा कही गई बातो के आधार पर ही। लोकाशाह ने अपने समय मे मूर्ति-निर्माण, मूर्ति-पूजा, मूर्ति-प्रतिप्ठा, तीर्थ-यात्रा आदि सभी मूर्ति-पूजा से सम्बन्ध रखने वाली बातो का विरोध किया। उन्होने इन सवमे हिसा देखी। उन्होने दया मे ही धर्म माना। उनके विचारो का कई लोगो ने खडन किया और वे अपने युग मे बडे विवादास्पद व्यक्ति बने रहे।

लोकाशाह के नाम से जो गच्छ(सम्प्रदाय) चला वह उस रूप मे तो आज प्रचलित नही है पर उसी से सम्वन्धित स्थानकवासी सम्प्रदाय[१] की कई शाखाएँ आज विद्यमान है। इन शाखाओ के प्रवर्त्तको ने मूर्ति-पूजा विरोधी मान्यता को कायम रखते हुए भी अपने-अपने ढग से कुछ नई बाते जोडी ह। उन नई बातो को जोडने के कारण ही ये सम्प्रदाय अलग-अलग नामो से पहिचाने जाते है। कहा जाता है कि लोकाशाह ने किसी भी साधु के पास दीक्षा नही ली[२] पर वे भिक्षाजीवी थे।

लोकाशाह के प्रमुख शिप्यो मे भाणाजी हुए। उन्होने महाव्रतो को स्वीकार किया था। इन्ही से जो परम्परा चली वह लोका के नाम से प्रसिद्ध हुई। भाणाजी के बाद भद्राजी, नूनाजी, भीमाजी, जगमाल जी, सखाजी, रूपजी, और जीवाजी ऋपि हुए। जीवाजी के बाद यह सघ तीन भागो—गुजराती लोकागच्छ, नागौरी लोकागच्छ और उत्तरार्ध लोकागच्छ—मे विभक्त हो गया। और धीरे-धीरे सघ मे शिथिलता आ गई। तव सत्रहवी शती के अन्त मे और अठाहरवी शती के आरम्भ मे कुछ आत्मार्थी पुरुषो ने क्रिया उद्धार के द्वारा पुन उस मलिनता व शैथिल्य को दूर किया। उन क्रिया-उद्धारको मे प्रमुख है श्री जीवराज जी, श्री धर्मसिह जी, पूज्य लवजी ऋपि, श्री धर्मदास जी

---

१ आराध्य की मूर्ति स्थापित न करके स्थान विशेप मे सामूहिक रूप मे या व्यक्तिगत रूप मे निराकार उपासना करने के कारण उनके अनुगामियो का सम्प्रदाय "स्थानकवासी सम्प्रदाय" कहलाया।

२ कुछ विद्वान इनका दीक्षित होना भी स्वीकार करते हे।

और श्री हरिदास जी। आचार्य जयमल्लजी महाराज आचार्य धर्मदास जी महाराज की सम्प्रदाय की परम्परा से सम्बन्धित है। धर्मदास जी के कई शिष्य थे उनमे धन्ना जी महाराज प्रमुख थे। धन्ना जी साचोर के मूथा बाघा शाह के पुत्र थे। सवत् १७२७ मे ये दीक्षित हुए। मेडता मे इनका स्वर्गवास हुआ। इनके शिष्य थे भूधर जी। भूधर जी के ही शिष्य थे हमारे आलोच्य कवि आचार्य श्री जयमल्ल जी।

जयमल्ल जी के बाद जो आचार्य परम्परा आज तक चली आयी है उसका विवरण इस प्रकार है।

### (१) आचार्य श्री रायचन्द जी

श्री जयमल्ल जी ने सघ-व्यवस्था का दायित्व रायचन्द्र जी महाराज को सवत् १८४९ मे युवाचार्य घोषित करके प्रदान किया। आचार्य रायचन्द जी का जन्म सवत् १७९६ मे आसोज शुक्ला एकादशी को जोधपुर मे हुआ। इनके पिता विजयराजी धाडीवाल एव माता नन्दा देवी थी। अपने यौवन-काल मे ही इन्होने गुरु गोरधनदास जी द्वारा सवत् १८१४ आसाढ शुक्ला एकादशी को मारवाड के प्रसिद्ध नगर पीपाड मे दीक्षा ग्रहण की।

ये बडे ज्ञानी और सफल कवि थे।[1] इन्होने तत्वात्मक, उपदेशात्मक, स्तुत्यात्मक एव कथात्मक रूप से विशाल साहित्य की रचना की।[2]

रायचन्द जी ने ७ शिष्यो को दीक्षा प्रदान की। उनकी शिक्षा-दीक्षा तप, त्याग, वैराग्य आदि का दायित्व वहन करते हुए स० १८६८ माघ कृष्णा चतुर्दशी को ये स्वर्गवासी हुए।

### (२) आचार्य आसकरण जी

आचार्य रायचन्द जी के बाद ये आचार्य बने। आचार्य श्री रायचन्द जी ने स० १८५७ मे आषाढ कृष्णा पचमी के दिन इन्हे युवाचार्य पद प्रदान किया।

इनका जन्म तिमरपुर मे सवत् १८१२ मे मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया को हुआ। इनकी माता का नाम गीगादे और पिता का नाम रूपचन्द जी बोथरा था। इनकी दीक्षा सवत् १८३० मे वैशाख कृष्णा पचमी को तिंवरी मे हुई।

---

१ इनके कवि रूप के विशेष अध्ययन के लिए देखिए—सुश्री स्नेहलता माथुर का आचार्य रायचन्द जी की पच्चीसी सज्यक रचनाये (अप्रकाशित लघुशोध प्रवन्ध)

२ इनकी ये सभी रचनायें "आचार्य श्री विनयचन्द ज्ञान भण्डार' जयपुर मे सुरक्षित हैं।

ये भी अच्छे कवि थे। इन्होने १० भव्यात्माओ को दीक्षा दी। इनका स्वर्गवास सवत् १८८२ मे कार्तिक कृष्णा पचमी को हुआ।

**(३) आचार्य सबलदास जी**

आचाय आसकरण जी के वाद ये आचार्य वने। इनका जन्म सवत् १८२८ मे भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को पोकरण मे हुआ। इनकी माता का नाम सुन्दर देवी एव पिता का नाम आनन्दराम जी लूणिया था। सवत् १८४२ की मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीया को वचकला ग्राम मे आचार्य रायचन्द जी द्वारा इन्होने मुनिदीक्षा ग्रहण की।

ये भी अपने समय के अच्छे कवि थे। इन्हे छन्द शास्त्र का गहरा ज्ञान था। इनका स्वर्गवास सवत् १९०३ की वैशाख शुक्ला नवमी को सोजत मे हुआ। इनके चार शिष्य हुए।

**(४) आचार्य हीराचन्द जी—**

आचार्य जयमल्ल जी के बाद चतुर्थ आचार्य हीराचन्द जी हुए। इनका जन्म सवत् १८५४ मे भाद्रपद शुक्ला पचमी को विराई ग्राम (राजस्थान) मे नरसिह जी काकरिया के यहाँ हुआ। इनकी माता का नाम गुमानदेवी था। दस वर्ष की अवस्था मे इनकी दीक्षा सवत १८६४ आश्विन कृष्णा तृतीया को सोजत मे हुई।

सवत् १९२० मे फाल्गुन कृष्णा सप्तमी को इनका स्वर्गवास हुआ। इनके ५ शिष्य हुए।

**(५) आचार्य कस्तूरचन्द जी**

ये पाँचवे आचार्य हुए। इनका जन्म सवत् १८९८ की फाल्गुन कृष्णा तृतीया को विसलपुर मे हुआ। इनकी माता का नाम कुन्दनादे व पिता का नाम नरसिहजी था। इन्होने सवत् १९०७ मे पाली मे दीक्षा ग्रहण की और सयम के अग्निपथ पर निर्बाध गति से बढते रहे। इनके ५ शिष्य हुए। सवत् १९७७ मे इनका स्वर्गवास हुआ।

**(६) आचार्य भीखमचन्द जी**

ये छठे आचार्य हुए। ये सवत् १९६० मे भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा को आचार्य पद पर जोधपुर मे आसीन हुए। इनकी माता का नाम जीवन दे एव पिता का नाम रत्नचन्द जी था। इन्होने युवावस्था मे ही सयम ग्रहण कर

लिया था। इनके दो शिष्य मनसुख जी एव कानमल जी हुए। सवत् १९६५ की वैशाख कृष्णा पचमी को इनका स्वर्गवास हुआ।

(७) आचार्य कानमल जी

ये सातवे आचार्य हुए। इनका जन्म सवत् १९४८ की माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन धवा गाँव मे हुआ। इनकी माता का नाम तीजादे व पिता का नाम अगराज जी पारिख था। १४ वर्ष की अल्पायु मे ही इन्होने दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा के तीन वर्ष बाद ही आचार्य भीखमचन्द जी ने इन्हे आचार्य पद पर आसीन कर दिया। इनमे असाधारण योग्यता, सयमनिष्ठा और अनुशासन की अद्भुत क्षमता थी। सवत् १९८५ मे इनका स्वर्गवास हुआ।[1]

मुनि श्री कानमल जी महाराज के स्वर्गवास के बाद वि० स० २००४ मे नागौर मे श्रमण सघीय प्रान्तमन्त्री, प० र० मुनि श्री मिश्रीमल जी 'मधुकर' बडे समारोह के साथ आचार्य पद पर आसीन हुए। पर परिस्थितियाँ ऐसी निर्मित हुई कि इन्होने आचार्य पद पर न रहने का निर्णय किया। वि० स० २००९ मे सादडी (मारवाड) मे अखिल भारतीय स्थानकवासी मुनियो का बृहत् सम्मेलन हुआ। जिसके सर्वसम्मत निर्णय से अन्य सम्प्रदायो के साथ इस सम्प्रदाय का भी श्रमण सघ मे विलीनीकरण हो गया। इस श्रमण सघ के वर्तमान आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज है।

### जन-सम्पर्क एव धर्म-प्रचार

आचार्य जयमल्लजी अपने समय के महान् सन्तो मे से थे। इनका राज-वर्ग एव सामान्य वर्ग दोनो से ही अच्छा सम्पर्क था। अपनी साधनासिक्त ओजस्विनी वाणी द्वारा इन्होने कई राजाओ को आखेटचर्या मे होने वाली हिसा से मुक्त किया और उनमे से कइयो को अपना सुदृढ अनुयायी बना लिया।

महाराजाओ मे जोधपुर-नरेश अभयसिह जी जिनका शासनकाल सवत् १७८१ से सवत् १८१७ तक रहा[2]। इनसे बहुत प्रभावित थे। जब जयमल्ल जी महाराज पीपाड मे स्थिरता कर रहे थे, तब इनकी गौरव गाथा सुनकर महाराजा ने अपने दीवान रत्नसिह भण्डारी को भेजकर इनको जोधपुर पधारने की विनती करवाई थी। जब आप जोधपुर पधारे तब महाराज अपने

---

१ उपर्युक्त सभी आचार्यों के बारे मे एक विशेष बात यह रही कि सभी या तो अविवाहित थे या वाग्दान होने पर मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली थी।

२ डा० हीराचन्द गौरीशकर ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड

सरदारो एव रानियो के साथ दशन करने आये[1]। यही नही सवत् १७९१ मे जब ये दिल्ली विराज रहे थे तब जोधपुर नरेश भी इनकी यशोगाथा से इतने प्रभावित हुए ये कि उन्होंने शाहजादे को भी यह शुभ सन्देश सुनाया। शाहजादे के हृदय मे मुनि-दर्शन की इच्छा वलवती हुई। उसने इनके दर्शन किये व अपने हिसा-अहिसा विपयक अनेक प्रश्नो का समाधान पाया। इसके वाद उन्होंने निरपराध प्राणियो का वध न करने की प्रतिज्ञा की[2]। जोधपुर नरेश के साथ ही कविवर करणीदान जी[3] ने भी इनके दर्शन किये थे[4]।

महान व्यक्तियो को अपने जीवन काल मे अनेक परीपह एव कष्ट सहन करने पडते है। इसके ज्वलन्त उदाहरण है—ईसा, महात्मा-गाधी आदि। आचार्य जयमल्लजी को भी अनेक स्थानो पर, जहाँ वे धर्म प्रचार करने गये, कई असुविधाओ का सामना करना पडा। जैसलमेर मे पधारने पर वहाँ कुछ विरोधियो ने इनकी मूर्ति वनवाकर उस पर धूल उछाली। यह समाचार सुनकर आपने मुस्कराकर कहा—"मेरे कर्म धुल रहे है।" यह है आपकी दयालुता एव सहनशीलता। आपके सहनशील व्यक्तित्व से प्रभावित होकर वहाँ के राजा ने अपने किले मे इनका सम्मान एव सत्कार किया और साधुचर्या की जानकारी पाकर प्रसन्नता व्यक्त की। इन्होने अपने ग्रन्थ भण्डार भी इन्हे वतलाये।

आचार्य जयमल्लजी ने धर्म-प्रचार करते हुए अपने नये क्षेत्र भी वनाये। वीकानेर एक ऐसा ही क्षेत्र था। वहाँ यतियो का अधिक प्रभाव था।

---

१ राज दीवान जोधपुर केरा वन्दन तिणवारी।
आया धर्म उद्योत हुओ अति पाखण्ड मतिहारी॥

—व्याख्यान नवरत्न माला

२ पूज्य गुणमाला चौथमल्लजी महाराज पृ० ६९-७६

३ ये कविया शाखा के चारण मेवाड के शूलवाडा गाँव के रहने वाले थे। इन्होने "सूरजप्रकाश" नाम का वडा ग्रन्थ लिखा है जिसमे ७५०० छन्द है। महाराजा अभयसिंह ने इन्हे लाखपसाव तथा कविराजा की उपाधि दी थी।

४ पूज्य गुणमाला चौथमल्लजी महाराज पृ० ८२

५ वही पृ० ८२

**"बीकानेर है क्षेत्र जतियो का, नही थारो पग फेर"** वहाँ स्थानकवासियो का उस समय कोई प्रभाव नही था। सम्भवत यह पहले ही सन्त थे जिन्होने बीकानेर मे जाकर स्थानकवासी धर्म की ज्योति को प्रज्ज्वलित किया था। इस धर्माभियान मे इन्हे अनेक कष्टो का सामना करना पडा। आठ दिन तक ये बीकानेर की सीमा से बाहर अनेक असुविधाओ के बीच रहे—

**आटो जल भेलो कर आप आरोगे सन्त।**
**आठ दिवस इम नीसर्‌या हिवे सुन जो धर खत॥**

अन्तिम दिन आपकी श्रद्धालु श्राविका रामकँवरबाई को जब इस घटना का पता लगा तो उसने प्रतिज्ञा की "पूज्य पधारिया मोरे हाथ से जो वहिरे अन्नपानी" तब ही वे भोजन करेगी। रामकँवर बाई के अतिप्रिय दो पुत्रो ने तत्कालीन बीकानेर-नरेश गजसिंह जी[1] से विशेष आज्ञा-पत्र प्रचारित करवाकर पूज्य श्री को नगर मे प्रवेश करवाया। स्वय गजसिह जी जयमल्ल जी के धर्मोपदेश से प्रभावित हुए व एक माह तक इन्हे अपने महल मे ठहराया[2]।

आपके व्यक्तित्व एव चरित्र से कई ठाकुर एव सरदार भी प्रभावित थे। पीपाड से जोधपुर विहार करते समय आप मार्ग का गाँव "बुचकला" मे ठहरे। वहाँ के ठाकुर के यहाँ गोचरी गये। ठाकुर की अनुपस्थिति मे उसके नौकर ने आहार देने से मना कर दिया। ठाकुर को जब यह पता चला तो उसने क्षमायाचना की, दिन भर आचार्य श्री की सेवा मे बैठे रहे। कभी भी आखेट न करने की प्रतिज्ञा ली[3]। इसी प्रकार पोकरण के ठाकुर देवीसिंह जी चापावत को भी शिकारवृत्ति से विमुख किया[4]। देवगढ के जसवन्तराय और देलवाडा के राव रघु भी इनका उपदेश सुनकर धर्मानुयायी बन गये[5]।

जयमल्ल जी जैन आगमो के विशिष्ट ज्ञाता थे। एक बार पीपाड मे एक

---

१ इनका शासन काल सवत् १८०२ से १८४४ तक रहा।
—डा० हीराचन्द गौरीशकर ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग—१ पृ० ३२३-५८

२ बीकानेर नरेश रे रुची धर्मरी रेश।
सुल्लभ बोधी ने थयो, सुण्यो पूज्य उपदेश॥
—पूज्य चौथमलजी महाराज पूज्य गुणमाला, पृ० ६१-६८

३ स्वामीजी चौथमल जी महाराज—पूज्य गुणमाला—६१

४ वही,—७८

५ वही,—१०३

पोतियावन्ध[1] से आपका शास्त्रार्थ हो गया। उसका कहना था कि इस काल मे महावीर ने मुनिवृत्ति का निषेध किया है। आचार्य जयमल्ल जी ने इस शका का भगवती सूत्र के आधार पर निवारण किया[2]।

## स्वर्गवास

काल के क्रूर हाथ महान से महान व्यक्ति को भी नही छोडते। श्री जयमल्लजी ने ५० वर्ष तक आचाय पद को सुशोभित किया और गॉव-गॉव, नगर-नगर मे विचरण कर धर्म की ज्योति प्रज्वलित की। जीवन के अन्तिम वर्षों मे स्वास्थ्य खराब हो जाने से ये रोगाक्रान्त हो गये। १३ वर्ष तक नागौर मे ही स्थिरवास करते रहे[3]।

अपने जीवन के अन्तिम क्षणो का आचार्य-प्रवर को पहले से ही आभास हो गया था। फलत उन्होने शाश्वत शान्ति लाभ की कामना से एक मास का सथारा[4] स्वीकार किया। वि० सवत् १८५३ की वैशाख शुक्ला चतुर्दशी की पुण्य-वेला मे आपने अपने नश्वर शरीर का उत्सग किया और मरुभूमि की उस धर्म प्राण जनता को, सरस मानस को अपने वियोग से सहसा ही मरुभूमि जैसा उजाड बना दिया।

इस प्रकार यह महान् विभूति जो यौवन की चढती दुपहरी मे साधना के मार्ग पर कदम बढाकर चली थी, वह उसी श्रद्धा, निष्ठा और अडिग मनोबल के साथ जीवन की सान्ध्य-वेला तक निरन्तर जागरूक एव उत्साहपूर्वक अपने लक्ष्य को निकट करती हुई, एक दिन अपनी साधना की पूर्णाहुति कर, इस नश्वर देह को त्याग चली[5]।

---

१ १६वी शताब्दी से पोतिया-बन्ध की एक परम्परा चली है। ये श्रावक होते है पर साधु के समान उपाश्रयो मे बैठकर शास्त्र का पठन-पाठन करते है। घरो से भिक्षा लाते है, खुले सिर और नगे पॉव चलते है।

—पोतियाबन्ध परम्परा पर एक दृष्टि गजेन्द्र मुनि जिनवाणी पृ० १९७ २००

२ पूज्य चौथमलजी महाराज पूज्य गुणमाला,—५८ ६०

३ बरस बावन बीत्या पिछे रह्या आप इक ठोर।
तेरे बरस तक पूज्य जी नीको शहर नागौर॥

—चौथमलजी—नव व्याख्यान माला—७५

४ मृत्युपर्यन्त अन्न जल ग्रहण नही करना।

५ श्री मधुकर मुनि ज्योतिधर जय—३७

## व्यक्तित्व

जयमल्लजी का व्यक्तित्व बहुमुखी था। उनका हृदय नवनीत सा कोमल, फूलो सा सौरभ-मय एव द्राक्षा सा मधुर था। उनके निर्मल मन मे दया की शीतल तरगे प्रतिपल तरगित होती रहती थी। दूसरे के दुख को देखकर उनका हृदय बर्फ के समान पिघल जाता था[1]।

उनका हृदय सकल्प मे वज्र के समान कठोर था। मात्र सुदर्शन सेठ की कथा सुनने से ही वे दीक्षा अगीकार करने के लिए कृतसकल्प हो गये थे। इतने कठोर सकल्प को उन्होने सभी पारिवारिक एव सामाजिक बाधाओ के आने पर भी पूर्ण कर दिखाया। उनका व्यक्तित्व चट्टान के समान अडिग एव सत्य के प्रति अनन्य आस्था लिए हुए था।

उनके हृदय मे सागर-सी गम्भीरता एव विशालता थी। उनका हृदय अत्यधिक उदार था। हस्तलेखन के उस युग मे स्वय ने हाथ से लिखा सम्पूर्ण 'भगवती सूत्र' साध्वियो को सहर्ष दे देना, उनके उदार हृदय की एक विरल झलक है।

जयमल्लजी स्पष्ट वक्ता भी थे। वे समय पर उपदेश एव हित-शिक्षा देने मे कभी भी नही चूकते थे।

एक बार का प्रसग है कि जोधपुर नरेश बख्तावर सिंह जी आचार्य श्री की सेवा मे उपदेश सुनने आये थे। क्षत्रिय होने के कारण शिकार का व्यसन तो उनमे जन्मजात था ही, किन्तु अन्य व्यसन भी थे, जिसके कारण प्रजा के हृदय मे उनके प्रति कुछ अनादर व्याप्त था, किन्तु भय के कारण राजा को कहे कौन ? म्याऊ के मुँह घण्टी कौन बाँधे ?

आचार्य श्री के दर्शन करने महाराज बख्तावर सिंह जी जब आये तो स्पष्टवक्ता एव वाणी के वर्चस्वी आचार्यश्री ने कवित्व की साकेतिक भाषा मे उपदेश देते हुए निम्न पद्य कहे—

सब पर करुणा समान राखे<br>
वह महीपति है नीति साखे,<br>
पर तुम 'नृप पद' पाया रे<br>
ध्रुव पद विसरीजे ॥३॥

---

१ मुनि श्री मिश्रीमल जी 'मधुकर' ज्योतिधर जय—१४

नहीं तो न्याय बरावर करता
वनचर निर्भय वन सचरता
न्यायप्रिय कहलाया रे
सब ही सम गिनीजै ॥४॥

राजा को 'महीपति' कहा जाता है अर्थात् पृथ्वी का स्वामी और 'नरपति' कहा जाता है—अर्थात् समस्त मनुष्यो का रक्षक। जो राजा समस्त पृथ्वी का पालक और मनुष्यो का रक्षक कहलाता है, उसमे यदि कोई एक भी दुर्गुण हो तो वह उस पद के योग्य कैसे कहा जा सकता है ? सुन्दर शरीर मे एक फोडा हो जाने पर भी वह पीडा से व्यथित होता रहता है, उसी प्रकार राजा मे एक भी दुर्गुण होने पर प्रजा रूप शरीर मे शाति कैसे सुरक्षित रह सकती है ?

राजा यदि शिकारी हो तो जगल के वनचरो का जीवन असुरक्षित रहता है, राजा यदि परस्त्री का व्यसनी हो तो नगर की कुलस्त्रियो का मन भयभीत रहता है—"ऐसी स्थिति मे वह न तो 'महीपति' पद के योग्य हो सकता है और न 'नरपति' पद के।"

आचार्य श्री का यह साकेतिक किन्तु निर्भीकतापूर्ण उपदेश सुनकर बख्तावर सिह जी ने दोनो ही दुर्गुणो का परित्याग कर दिया।[1]

आचार्य श्री सत्य के अन्वेषक थे। उन्हे झूठे आडम्बर से बडी घृणा थी। जो लोग केवल भक्ति और भावना की झूठी बाते बनाते, पूज्य श्री बडी निर्भीकता के साथ उनकी इस आडम्बरप्रिय वृत्ति पर चोट करते।

जयमल्लजी कठोर तपस्वी एव कष्टसहिष्णु थे। अपने सम्पूर्ण जीवन मे कठोर तप साधना करते रहे। उन्होने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया था। वे एकान्तर तप की साधना करते थे। अपने गुरु महाराज के स्वर्गवास के बाद कभी लेटकर निद्रा नही ली। वे सकल्पशक्ति के धनी और धुन के पक्के थे।

---

१ बख्तावर नरवर हर्षाया,
आखज अरु परत्रिय छिटकाया,
वलि कहै सुन गुरु राया रै
करुणा अब कीजै ॥५॥
—पूज्यगुण माला (स्वामी चौथमल जी)

जयमल्ल जी का व्यक्तित्व मधुर एव प्रभावशाली था। उनकी आँखो मे तेज, स्वभाव मे सरसता, हृदय मे करुणा और वाणी मे ओज था। कठोर से कठोर प्राणी भी इनके सम्पर्क मे आते ही करुणाशील बन जाता था। ये सच्चे अर्थो मे धर्म-पथ के दीप-स्तम्भ थे। बाधाओ को हँसते हुए सहन करना इनका स्वभाव बन गया था।

तपोनिधि "सयम-शुचिता-सार" के रूप मे मोह मल्ल के प्रबल विजेता को जो श्रद्धाजली[1] अर्पित की गई है, वह सोलह आने ठीक है। कालजयी यह शूरवीर अपने आप मे अद्भुत था। हाथ मे क्षमा-खड्ग और शील-सत्य की बरछी लेकर यह ज्ञान के अश्व पर आरूढ था।[2]

---

१ प० शोभाचन्द भारिल्ल, गुणगीतिका—३
२ ह० स्मृति ग्रथ डा० नरेन्द्र भानावत का निबध—१४१

नहीं तो न्याय बराबर करता
वनचर निर्भय वन सचरता
न्यायप्रिय कहलाया रे
सब ही सम गिनीजें ।।४।।

राजा को 'महीपति' कहा जाता है अर्थात् पृथ्वी का स्वामी और 'नरपति' कहा जाता है—अर्थात् समस्त मनुष्यो का रक्षक । जो राजा समस्त पृथ्वी का पालक और मनुष्यो का रक्षक कहलाता है, उसमे यदि कोई एक भी दुर्गुण हो तो वह उस पद के योग्य कैसे कहा जा सकता है ? सुन्दर शरीर मे एक फोडा हो जाने पर भी वह पीडा से व्यथित होता रहता है, उसी प्रकार राजा मे एक भी दुर्गुण होने पर प्रजा रूप शरीर मे शाति कैसे सुरक्षित रह सकती हे ?

राजा यदि शिकारी हो तो जगल के वनचरो का जीवन असुरक्षित रहता है, राजा यदि परस्त्री का व्यसनी हो तो नगर की कुलस्त्रियो का मन भयभीत रहता है—"ऐसी स्थिति मे वह न तो 'महीपति' पद के योग्य हो सकता है और न 'नरपति' पद के ।"

आचार्य श्री का यह साकेतिक किन्तु निर्भीकतापूर्ण उपदेश सुनकर बख्तावर सिंह जी ने दोनो ही दुर्गुणो का परित्याग कर दिया ।[1]

आचार्य श्री सत्य के अन्वेपक थे । उन्हे झूठे आडम्बर से वडी घृणा थी । जो लोग केवल भक्ति और भावना की झूठी बाते बनाते, पूज्य श्री वडी निर्भीकता के साथ उनकी इस आडम्बरप्रिय वृत्ति पर चोट करते ।

जयमल्लजी कठोर तपस्वी एव कष्टसहिष्णु थे । अपने सम्पूर्ण जीवन मे कठोर तप साधना करते रहे । उन्होने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया था । वे एकान्तर तप की साधना करते थे । अपने गुरु महाराज के स्वर्गवास के बाद कभी लेटकर निद्रा नही ली । वे सकल्पशक्ति के धनी और धुन के पक्के थे ।

---

१ बख्तावर नरवर हर्षाया,
आखज अरु परत्रिय छिटकाया,
वलि कहै सुन गुरु राया रै
करुणा अव कीजै ।।५।।
—पूज्यगुण माला (स्वामी चौथमल जी)

जयमल्ल जी का व्यक्तित्व मधुर एव प्रभावशाली था। उनकी आँखो मे तेज, स्वभाव मे सरसता, हृदय मे करुणा और वाणी मे ओज था। कठोर से कठोर प्राणी भी इनके सम्पक मे आते ही करुणाशील बन जाता था। ये सच्चे अर्थों मे धर्म-पथ के दीप-स्तम्भ थे। बाधाओ को हँसते हुए सहन करना इनका स्वभाव बन गया था।

तपोनिधि "सयम-शुचिता-सार" के रूप मे मोह मल्ल के प्रबल विजेता को जो श्रद्धाजली[1] अर्पित की गई है, वह सोलह आने ठीक है। कालजयी यह शूरवीर अपने आप मे अद्भुत था। हाथ मे क्षमा-खड्ग और शील-सत्य की बरछी लेकर यह ज्ञान के अश्व पर आरूढ था।[2]

---

१ प० शोभाचन्द भारिल्ल, गुणगीतिका—२
२ ह० स्मृति ग्रथ डा० नरेन्द्र भानावत का निबध—१४१

# कृति :

## सामान्य परिचय
एव
## साहित्य का वर्गीकरण

द्वितीय अध्याय
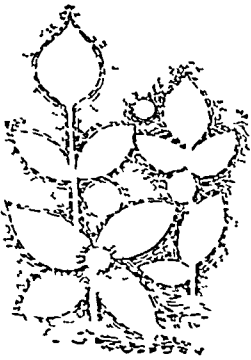
# कृतित्व

## कृतित्व सामान्य परिचय एव वर्गीकरण

कविता मानव मन की हर्ष-विषादमयी विविध अनुभूतियो की रसात्मक अभिव्यक्ति है। इन विविध अनुभूतियो को भिन्न-भिन्न प्रकार से ही प्रकट किया जाता है। साहित्य मे विविधता इसी कारण आती है। जैन कवियो मे यह विविधता विभिन्न काव्य-रूपो के रूप मे प्रकट हुई है। ये सन्त कवि अपने जीवन मे ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए जन साधारण को धर्मोपदेश देकर उनमे आध्यात्मिक भावना जागृत करने का प्रयत्न करते रहते है। इनके उपदेशो मे चरित्र-निर्माण, आत्मा की पवित्रता, सदाचरण आदि बातो पर विशेष बल रहता है। अपनी बात मे विविध स्वरो और रूपो मे गा-गाकर कहते है, फलस्वरूप इनके द्वारा रचित काव्य मे एक ही चरित्र विविध काव्य-रूपो मे कई बार आता हुआ परिलक्षित होता है। जयमल्ल जी का काव्य भी इसका अपवाद नही है।

आचार्य जयमल्लजी ने बडी सख्या मे रचनाएँ लिखी। ये रचनाएँ यत्र-तत्र ज्ञान भडारो मे बिखरी हुई पडी थी पर पण्डित मुनि श्री मिश्रीमलजी 'मधुकर' ने बहुत परिश्रम एव लगन से 'जयवाणी' नामक पुस्तक मे इनकी ७१ रचनाएँ सकलित की है। इस पुस्तक का प्रकाशन सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा मे हुआ है। इन रचनाओ के अतिरिक्त कुछ और रचनाएँ हस्तलिखित प्रतियो के रूप मे भडारो मे सुरक्षित है।

'जयवाणी'' मे सकलित रचनाओ को इसके सम्पादन ने निम्नलिखित चार भागो मे विभक्त किया है—

(१) स्तुति
(२) सज्झाय
(३) उपदेशी पद
(४) चर्चा, दोहावली, चरित्र।

"जयवाणी" का यह विभाजन कही-कही पर समीचीन प्रतीत नही होता। कई रचनाएँ ऐसी है जो इन चार विभागो मे से किसी मे भी समाविष्ट नही होती, उदाहरण के लिए **"चन्द्रगुप्त राजा के सोलह सपने", "गौतम पृच्छा" "न सा जाई न सा जोणी", "भविष्यत काल के तीर्थंकर", "नाक" एव 'दोहावली"** आदि ले सकते है। दूसरी त्रुटि यह है कि "**सज्झाय**" नाम से किये गये वर्ग मे एक ही प्रकार और विषय की रचनाएँ सकलित नही है। "सज्झाय" से सामान्यत स्वाध्याय का अर्थ लिया जाता है, पर इस "सज्झाय" विभाग मे आई हुई कई रचनाएँ इस अर्थ की सूचक नही है। कई रचनाओ मे तात्विक एव व्यावहारिक उपदेश की प्रधानता है।

हमारी दृष्टि से आचार्य जयमल्लजी की समस्त रचनाओ का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) स्तुतिपरक रचनाएँ,
(२) उपदेशपरक रचनाएँ।

**उपदेशपरक रचनाएँ**

इसके तीन उपवर्ग किये जा सकते है—

(क) तात्विक उपदेशपरक रचनाएँ
(ख) व्यावहारिक उपदेशपरक रचनाएँ
(ग) मिश्रित उपदेशपरक रचनाएँ

(३) चरित्र या आख्यानपरक रचनाएँ
(४) प्रकीर्णक रचनाएँ

**(१) स्तुतिपरक रचनाएँ**

स्तुतिपरक रचनाओ का सम्बन्ध मुख्यत श्रद्धेय पुरुषो की स्तुति व स्तवन से है। आचार्य श्री जयमल्लजी ने इन रचनाओ मे प्रधानरूप से तीर्थंकरो[1], विहरमानो[2], साधु-साध्वियो आदि की स्तुति की है। तीर्थंकरो मे

---

१ आध्यात्मिक विकास के ऊँचे शिखर पर पहुँचने वाले महापुरुषो को जैन-धर्म मे तीर्थंकर कहा जाता है।

२ विहरमान वे कहलाते है जो इस समय तीर्थंकर है और महाविदेह क्षेत्र मे विचर रहे है।

सोलहवे तीर्थंकर शान्तिनाथ[1] एव तेइसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ[2] की स्तुति करने मे इनकी वृत्ति अधिक रमी है। विहरमानो मे प्रथम विहरमान श्री सीमधर स्वामी[3] इनके आराध्य रहे हैं। साधु-साध्वियो मे जो आदर्श साधु-साध्वी हुए है उनका नामोल्लेख कर उनके साधनामय जीवन का गुणगान किया गया हे। "चार मगल" मे अरिहन्त, सिद्ध, साधु एव केवली-प्ररूपित धर्म का माहात्म्य प्रतिपादित किया है।

प्रमुख स्तुतिपरक रचनाओ का विवरण इस प्रकार है—

| क्रमाक रचना-नाम | वर्ण्य-विषय | छन्द सख्या |
|---|---|---|
| (१) चउवीसी स्तवन | २४ तीर्थंकरो का नाम लेकर उनका स्तवन किया है। | ६<br>(१) ५० |
| (२) चार मगल | अरिहन्त, सिद्ध, साधु एव केवली प्ररूपित धर्म की स्तुति | (२) १६<br>(३) ४४<br>(४) १०८ |
| (३) चौसठ सतियो की सज्झाय | आदर्श चौसठ सतियो का नाम स्मरण | ४२ |
| (४) पार्श्वनाथ जी का स्तवन | २३ वे तीर्थंकर की स्तुति | २० |
| (५) बडी साधु वन्दना | अनेक आदर्श साधुओ का गुण कीर्तन | १११ |
| (६) बीस विहरमानो का स्तवन | बीस विहरमानो का स्मरण-सकीर्तन | ९ |
| (७) " " | " " " | ६ |
| (८) शान्ति जिन स्तवन | १६वे तीर्थंकर की स्तुति | २५ |
| (९) श्री सीमधरजी का स्तवन | प्रथम विहरमान का गुण-स्मरण | २० |

---

१ सर्वार्थ सिद्ध थकी रे, चवी तव देश नगरमा शान्ति हुई।
शाति जी नाम दियो सखरो, श्री शान्ति जिनेश्वर शाति करो ॥
—जयवाणी ४

२ ववे जिमि अधिकी चन्द्रकला, शुभ लच्छण पडिया देहे सगला।
रूडी रेखा पग पाणी, श्री पास भजो पुरुषादानी ॥
—जयवाणी ८

३ देही पाँच से धनुषतणी, हेमवरण उपमा घणी।
सहस आठ लक्षण नामी, सुमरो श्री सीमधर जी स्वामी ॥
—जयवाणी १२

## (२) उपदेशपरक रचनाएँ

उपदेशपरक रचनाएँ व्यावहारिक एव तात्विक उपदेशो से सम्वन्धित हे। इनमे सदाचार, ज्ञान, दृढ सम्यकत्व, धर्म-महिमा क्षमा, धर्म, पाप-परिणाम, वैराग्य, पुण्य आदि के सम्वन्ध मे विचार प्रकट किए गए है। आत्म कल्याण की ओर अग्रसर करने के लिए कवि ने साधु जीवन की उच्चता का प्रतिपादन किया है—

**साधु चिन्तामण रत्नसा, चाले दया रस चाल।**
**ज्यो ज्यो जतने सेविया, त्यो-त्यो किया निहाल।**

यह लोक (ससार) कवि को हटवाडे के मेले के समान लगता है।[1] इस "मिनख-जमारो" को सफल वनाने के लिए आत्मा को ही प्रयत्नशील होना पडेगा। मानव इस ससार मे वार-वार जन्म लेता एव मरता है। उसकी स्थिति गेद के समान है—

**ओ जीव राय ने रक थयो**
**बलि नरक निगोद मा बहु रे रह्यो।**
**रडवडियो जिम गेडि-दडो**
**श्री शान्ति जिनेश्वर शान्ति करो॥**

कुछ उपदेशी पदो मे कवि ने जैन-दर्शन के तात्विक सिद्धान्तो को पद्य-बद्ध किया है। ऐसे स्थलो पर पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग के कारण दुर्बोधता आ गई है। ऐसी रचनाओ मे **"इरियावही नी सज्झाय"**, **"पद्रह परमाधर्मी देव"**, **"शल्य छत्तीसी"**, **"जीवा बयालीसी'** आदि के नाम गिनाये जा सकते है।

प्रमुख उपदेशपरक रचनाएँ इस प्रकार है—

---

१ परदेशी परदेश मे किण सूँ करे रे स्नेह।
आया कागद उठ चले, आँधी गिणे न मेह॥

—जयवाणी, ११२

| क्रमाक | रचना-नाम | वण्य-विषय | छन्द सख्या |
|---|---|---|---|
| (१) | आत्मिक छत्तीसी | दुर्लभ मानव जीवन को सासारिक माया मोह से बचाना | ३७ |
| (२) | इरियावही नी सज्झाय | चलने मे लगे दोपो का प्रतिक्रमण | २० |
| (३) | उपदेश तीसी | ससार परिवर्तनशील (क्षणभगुर) हे | ३० |
| (४) | उपदेश वत्तीसी | मानव-जन्म की दुर्लभता एव नरक के अनेक दु खो का वर्णन | ३२ |
| (५) | कलियुगी लोक | इस युग के मानव का व्यवहार | ६ |
| (६) | कागदियो | सीमधर स्वामी को कवि ने पत्र लिखा हे | ११ |
| (७) | चेतन चेत | मानव-जन्म मे धर्म का माहात्म्य | २२ |
| (८) | चौवीस दण्डक की सज्झाय | चौवीस दण्डक का वर्णन | ११ |
| (९) | जीव चेतावनी | जीव को सासारिक माया मोह से ऊपर उठने की चेतावनी दी हे | १७ |
| (१०) | जीवा वयालिसी | अनेक भव मे जन्म लेने के वाद मानव जन्म मिला हे | ४२ |
| (११) | दीवाली | दिवाली का आध्यात्मिक रूपक | ४३ |
| (१२) | दृढ सम्यक्त्व | दृढ सम्यकत्व का महत्व | २८ |
| (१३) | धर्म महिमा | धर्म की महिमा वताई गई हे । | ४८ |

## (३) चरित या आख्यानपरक रचनाएँ

ये रचनाएँ किसी न किसी आदर्श महापुरुष के जीवन-प्रसगो से सबधित ह। ये स्तवन प्रधान व उपदेश-प्रधान रचनाओ की भाँति मुक्तक रूप मे न लिखी जाकर प्रबध रूप मे लिखी गई है। यह प्रबन्ध रूप महाकाव्य का सा विशाल आकार नही ग्रहण कर सका है। कवित्व की दृष्टि से मार्मिक स्थलो को स्फोट नही किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि उसमे कथा कहने की अधीरता ही अधिक दृष्टिगोचर होती है। यही कारण है कि इन कथाओ मे इतिवृत्त का अश ही अधिक है।

प्रत्येक कथा का अतिम उद्देश्य निवार्ण-प्राप्ति ही है। इन कथाओ का नायक सामान्यत उच्चकुलोत्पन्न राजकुमार है। विवाह से पूर्व या बाद मे उसे ससार से विरक्ति होने लगती है। विरक्ति का कारण किसी साधु का सम्पर्क, सत्सग या अन्य कोई मर्मस्पर्शी घटना का होना होता है। माता-पिता उसके मार्ग मे कोई न कोई बाधा उत्पन्न करते ह किन्तु वह विचलित नही होता और साधु-जीवन अगीकार कर लेता है। साधु-जीवन मे भी उसे अनेक कष्टो का सामना करना पडता है, किन्तु, वह कष्ट-जयी होकर अन्त मे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष का अधिकारी बनता है।

काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार काय की पाचो अवस्थाएँ किसी न किसी रूप मे इन कथाओ मे देखी जा सकती है। कथा के विकास मे कथानक रूढिया भी यहा प्रयुक्त हुई है। वर्णनो की ओर भी कवि का झुकाव रहा है। इन वर्णनो मे प्रमुख वर्णन है—नगर वर्णन, वैभव वर्णन, रूप वर्णन, विवाह वर्णन, दहेज वर्णन, दीक्षा वणन आदि। इन वर्णनो से ही इन चरित काव्यो मे प्रबध काव्योचित उठान एव विस्तार आ पाया है।

प्रमुख चरित या आख्यानपरक रचनाएँ इस प्रकार है—

| क्रमाक | रचना नाम | प्रेरणा स्रोत | ढाल सख्या |
|---|---|---|---|
| (१) | अर्जुन माली | अन्तगढ सूत्र | ६ |
| (२) | उदायी राजा | भगवती सूत्र | ६ |
| (३) | कार्तिक सेठ | ,, ,, | ५ |
| (४) | तेतली पुत्र | ज्ञाता सूत्र | १० |
| (५) | दारिद्र्य-लक्ष्मी सवाद | कल्पना प्रसूत | २ |
| (६) | देवदत्ता | दु खविपाक सूत्र | ५ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| (७) | प्रदेशी राजा | राजप्रश्नीय सूत्र | ३१ |
| (८) | महारानी देवकी | अन्तगढ सूत्र | २६ |
| (९) | मेघकुमार | ज्ञाता सूत्र | १६ |
| (१०) | भगवान नेमिनाथ | उत्तराध्ययन सूत्र | ३३ |
| (११) | भृगु पुरोहित | " " | ६ |
| (१२) | श्रावक महाशतक | उत्तराध्ययन सूत्र | ४ |
| (१३) | सती द्रौपदी | ज्ञाता सूत्र | २८ |
| (१४) | सद्दाल पुत्र | उपासकदशा सूत्र | ११ |
| (१५) | स्कदक ऋषि | प्रचलित कथा | ८ |
| (१६) | सुबाहु कुमार | सुखविपाक सूत्र | ८ |

कुछ चरित्रपरक रचनाएँ हस्तलिखित प्रतियो के रूप मे प्राप्त हुई हे जो इस प्रकार है[1]—

| क्रमाक | रचना नाम | प्रेरणा-स्रोत | ढाल सख्या |
|---|---|---|---|
| (१) | अम्बड सन्यासी की सज्झाय | उवाई सूत्र | ३ |
| (२) | मृगालोढा का चरित्र | | ८ |

(४) **प्रकीर्णक रचनाए**

इस वर्ग मे वे रचनाएँ समाविष्ट की जा सकती है जो उपर्युक्त तीन वर्गों मे से किसी मे भी नही आती । ये रचनाएँ इस प्रकार है—

| क्रमाक | रचना-नाम | वर्ण्य-विषय | छन्द सख्या |
|---|---|---|---|
| (१) | गौतम पृच्छा | गौतम द्वारा भगवान महावीर से प्रश्न पूछे गये है । | ११ |
| (२) | " " | गौतम द्वारा भगवान महावीर से प्रश्न पूछे गये हे । | १७ |

१ ये रचनाएँ आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भडार, जयपुर मे सुरक्षित हे । इन्हे इस ग्रन्थ के परिशिष्ट मे सकलित किया गया हे ।

| क्रमाक | रचना-नाम | वर्ण्य-विषय | छन्द सख्या |
|---|---|---|---|
| (३) | चन्द्रगुप्त राजा के सोलह सपने | राजा के सोलह सपनो से भविष्य मे होने वाले परिणाम बताये गये है। | ५४ |
| (४) | चर्चा | मूर्ति विपयक विचार | ४५ |
| (५) | दोहावली | भिन्न-भिन्न विपयो पर दोहे | ५२ |
| (६) | नाक | "नाक रखना" मुहावरे को समझाया गया है। | १६ |
| (७) | भविष्यत्काल के तीर्थंकर | भावी २४ तीर्थंकरो का वर्णन | १५ |
| (८) | श्री कृष्ण जी नी ऋद्धि | कृष्ण के ऐश्वर्य का वर्णन | ६३ |

आगे के पृष्ठो मे इन रचनाओ का विस्तृत अध्ययन एव मूल्याकन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

# साहित्यिक

# अध्ययन

तृतीय अध्याय
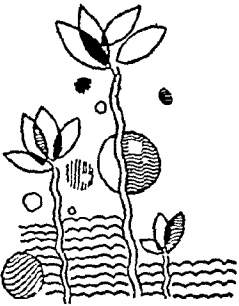
# साहित्यिक अध्ययन

कहा जाता है—"कवि बनते नही, जन्मते है।" सूर, तुलसी आदि सभी बड़े-बड़े कवि जन्म से ही कवि-हृदय लेकर पैदा हुए थे, इसी कारण उनके काव्य मे जो सहजता, मार्मिकता, हृदय की गहराई एव भावो की श्रेष्ठता मिलती है, वह श्लाघनीय है। हमारे आलोच्य कवि जयमल्लजी भी जन्मजात कवि थे। जन्म से ही उनमे कवि-हृदय विद्यमान था। इसीलिए उनकी कविताओ मे सहजता, मार्मिकता और निश्छल उपदेश प्रवणता के दर्शन स्थान-स्थान पर होते है।

आलोच्य कवि का काल हिन्दी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से रीति-काल आता है। ये रीति कालीन कवि पद्माकर के समकालीन थे। रीतिकाल मे रचा जा रहा साहित्य एक बँधी-बँधाई लीक पर चल रहा था। आचार्य कवि पहले कविता का लक्षण बताकर आचार्य-धर्म का पालन करते, तदनन्तर कवि-कर्म की पूर्ति करने के लिए कविता रचते थे। इन कवियो के साहित्य मे भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष प्रधान था। पर कवि जयमल्लजी इस बँधी-बँधाई परिपाटी मे बधकर नही चले। उन्होने रीतिकाल की वासनात्मक शृ गारधारा को भक्ति की प्रशान्त पावन साधनात्मक एव तात्विक धारा की ओर मोडा। इसमे कुछ अश उपदेश-वृत्ति का भी रहा। इस प्रकार सन्त कवि उस काल की दूषित मनोवृत्ति से रचमात्र भी प्रभावित नही हुए।

सन्त कवि जयमल्लजी की अधिकाश रचनाएँ मुनि श्री मिश्रीमल 'मधुकर' द्वारा सम्पादित पुस्तक "जयवाणी" मे सग्रहीत है। यहाँ उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है

## १ स्तुतिपरक रचनाएँ

काव्य के प्रारम्भ मे मगलाचरण या ईश्वर की स्तुति करने की एक प्राचीन परम्परा रही है।

आराध्य के गुणो की प्रशसा करना ही स्तुति है। लोक मे अतिशयोक्ति-पूर्ण प्रशसा को ही स्तुति कहते हैं, किन्तु यह परिभाषा भगवान पर घटित नही

होती। भगवान मे अनन्त गुण है। उनमे से एक का वर्णन हो पाना भी अशक्य है, फिर अतिशयोक्ति कैसे हो सकती है ?[1]

जैन कवि भगवान की स्तुति इसलिए नही करते कि वे सामन्तवादी राजा के समान प्रसन्न होकर उपहार बाटे। उनकी वीतरागता उन्हे ऐसा करने से रोकती है। वे अपने काव्य के प्रारम्भ मे आराध्य की स्तुति इसलिए करते है कि आराध्य के गुणो के स्मरण से उन्हे आत्म-जागृति की प्रेरणा मिले।

स्तुति का ही एक नाम मगलाचरण है। मगलाचरण शब्द मगल एव आचरण इन दो शब्दो से मिलकर बना है। ऐसा आचरण जिसमे आत्मा का मल हट जाए और परम सुख का अनुभव होने लगे। मगल प्रयोजन पर विचार करते हुए आचार्य यतिवृपभ ने लिखा है "शास्त्र के आदि मे मगल के पढने से शिष्य-शास्त्र के पारगामी होते है।" शास्त्र के आदि, अन्त एव मध्य मे किया गया मगल सम्पूर्ण विघ्नो को उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे सूर्य अन्धकार को।

जैनियो का प्राचीनतम मगलाचरण "**णमो अरिहन्ताण**" है। प्रत्येक कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व यह बोला जाता है। यहाँ तक भी देखा गया है कि धार्मिक पुरुप एव स्त्रियाँ खाना खाने से पूव भी इसे बोलती है। कवि ने चार 'मगल' नाम से एक रचना भी की है। यह मगलाचरण इस प्रकार है—

**णमो अरिहन्ताण,**
**णमो सिद्धाण**
**णमो आयरियाण**
**णमो उवज्झायाण**
**णमो लोए सव्व साहूण ॥**[2]

स्तुतिपरक रचनाओ मे कवि ने प्रसिद्ध आराध्य योग्य व्यक्तियो की स्तुति की है। यह स्तुति दो प्रकार से की गई है

(१) व्यक्ति प्रधान स्तुति
(२) सस्था प्रधान स्तुति।

---

१ डा० प्रेमसागर जैन, जैन भक्ति काव्य की पष्ठ भूमि पृ० २८-२९

२ अरिहन्तो को नमस्कार, सिद्धो को नमस्कार, आचार्यों को नमस्कार, उपाध्यायो को नमस्कार और लोक मे सर्व साधुओ को नमस्कार।

व्यक्तिप्रधान स्तुति मे तीर्थंकर, विहरमान, सतियो आदि की स्तुति की गई है। सस्थाप्रधान स्तुतिपरक रचनाओ मे प्रमुखतया अरिहन्त, सिद्ध, साधु (सामान्य साधुओ की विशेषताएँ) एव केवली प्ररूपित धर्म की स्तुति की गई है।

इन रचनाओ के अवश्य ही कोई प्रेरणा-स्रोत रहे होगे। प्रत्येक कवि कविता-कर्म मे प्रवृत्त होने से पूर्व कुछ न कुछ प्रेरणा अनुभव करता है। हमारे आलोच्य कवि के भी कुछ प्रेरणास्रोत अवश्य ही रहे होगे। जैन साधु अनेक स्थानो पर विचरण करते है एव विविध जनो स सम्पर्क रखते है, अत उनका ज्ञान बहुश्रुत होता है। सभव है इन रचनाओ को रचने की प्रेरणा भी इसी प्रकार मिली हो। इन सन्त कवियो का अध्ययन बहुत गहन होता था। जैन दर्शन, आगम अनेक सूत्रो, शास्त्रो आदि का ये अध्ययन करते थे। स्तुत्य जनो का वर्णन भी इन ग्रथो मे आ जाता है। कवि ने इस व्यापक अध्ययन के फलस्वरूप ही इन रचनाओ का प्रणयन किया।

कवि ने प्रारम्भ मे तीर्थंकर[1] विहरमान, सतियो, साधु-साध्वियो आदि की स्तुति की है। तीर्थंकर २४ माने गये है, उनमे से कवि ने सोलहवे तीर्थंकर शान्तिनाथ जी का एव तेईसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी का स्मरण विशेषरूप से किया है।

---

१ तीर्थंकर २४ माने गए है जो इस प्रकार है—

(१) ऋषभदेव जी
(२) अजितनाथ जी
(३) सभवनाथ जी
(४) अभिनन्द जी
(५) सुमतिनाथ थी
(६) पद्मप्रभु जी
(७) सुपार्श्वनाथ जी
(८) चन्द्रप्रभु जी
(९) नुविधिनाथ जी
(१०) शीतलनाथ जी
(११) श्रेयाननाथ जी
(१२) वासुपूज्य जी
(१३) विमलनाथ जी
(१४) अनन्तनाथ जी
(१५) धर्मनाथ जी
(१६) शान्तिनाथ जी
(१७) कुन्थुनाथ जी
(१७) अरहनाथ जी
(१९) मल्लिनाथ जी
(२०) मुनिसुव्रतस्वामी जी
(२१) नेमिनाथ जी
(२२) अरिष्टनेमि जी
(२३) पार्श्वनाथ जी
(२४) महावीर स्वामी जी

विहरमान[1] वीस माने गये है। इनमे प्रथम विहरमान श्री सीमधर स्वामी की स्तुति विशेप रूप से की गई है।

इन स्तुतिपरक रचनाओ मे कवि की एक ही शैली रही हे। २४ तीर्थकरो की सामूहिक स्तुति मे नाम-स्मरण मात्र ही किया गया है, अन्त मे इनके स्मरण से प्राप्त होने वाले लाभ की ओर कवि इ गित करता है

**ए चउवीसी जिनवर तणा,**
**ध्यावे हितकर नाम।**
**रिख 'जयमल्ल' इम बीनवे,**
**पामे अविचल धाम ॥**[2]

कवि को ऐश्वय, धन एव ऋद्धि की चाह नही हे। वह केवल इस भव-सागर को पारकर 'अविचल धाम' मे लीन होना चाहता है।

तीर्थकरो एव विहरमानो की स्तुति करते समय कवि ने जिस वर्णन-रूढियो का प्रयोग किया है, वे इस प्रकार हे—

(१) जन्म स्थल का नाम
(२) कौन से भव से चलकर आये है
(३) नाम देने का कारण
(४) माता-पिता आदि का नाम
(५) जन्मोत्सव का वर्णन

---

१ बीस विहरमानो के नाम इस प्रकार ह—

(१) श्री सीमधर स्वामी
(२) श्री युगमधरस्वामी
(३) श्री वाहुस्वामी
(४) श्री सुवाहुस्वामी
(५) श्री सुजातस्वामी
(६) श्री स्वयप्रभु स्वामी
(७) श्री ऋपभानन स्वामी
(८) श्री अनन्तवीर्य स्वामी
(९) श्री सूरप्रभु स्वामी
(१०) श्री विशालधर स्वामी
(११) श्री व्रजधर स्वामी
(१२) श्री चन्द्राननस्वामी
(१३) श्री चन्द्रवाहु स्वामी
(१४) श्री भुजग स्वामी
(१५) श्री ईश्वर स्वामी
(१६) श्री नेमिप्रभु स्वामी
(१७) श्री वीरसेन स्वामी
(१८) श्री महाभद्र स्वामी
(१९) श्री देवयशस्वामी
(२०) श्री अजितवीर्य स्वामी

२ जयवाणी, ३

(६) शिक्षा कैसी पाई
(७) राज्य कितने समय तक किया
(८) दीक्षा-वणन
(९) शिष्य-परम्परा
(१०) शारीरिक सौन्दय का वर्णन
(११) सथारा वर्णन[1]
(१२) इनका लक्षण (चिन्ह, जैसे शान्तिनाथ का लक्षण मृग है ।
(१३) नाम-स्मरण का महत्व आदि ।

यद्यपि ये वर्णन वहुत सक्षिप्त ह फिर भी इनमे प्रबधत्व का आभास होने लगता है । इन स्तुतिपरक रचनाओ मे कवि ने आराध्य के चरित्र-वर्णन के साथ ही भक्ति को भी समाहित कर लिया है । सामान्यत चरित्र की महिमा तो सभी जगह गाई गई है, किन्तु वहाँ उसे भक्ति से नितान्त पृथक माना है, पर यहाँ चरित्र की भी भक्ति की गई है । चरित्र और भक्ति का ऐसा समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है । यह वह भक्ति है, जिसका सम्बन्ध एक ओर वाह्य ससार से है, तो दूसरी ओर आत्मा से ।[2]

'शान्तिजिनस्तवन', पार्श्वनाथ जी का स्तवन' "श्री सीमधर जी का स्तवन" आदि मे उपर्युक्त सभी वणनो को देखा जा सकता है ।

कवि शान्तिनाथ के नामकरण का कारण बताते हुए कहता है—

सर्वार्थ सिद्ध थकी रे चवी,
तब देश नगरमा शान्ति हुई ।
शान्ती जी नाम दियो सखरो ।
श्री शान्ति जिनेश्वर शान्ति करो ॥

जन्मोपरान्त होने वाले उत्सव का भी कवि ने सकेत किया है—

छपन कुमारिका उल्लास घणो,
जेणे जन्मोच्छव कियो कुमर तणो
चोसठ इन्द्र आवि कलश भरो,
श्री शान्ति जिनेश्वर शाति करो ।

---

१ मृत्युपयन्त अन्न-जल का त्याग
२ डा॰ प्रेमसागर जैन जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि —१०

धीरे-धीरे शातिनाथ जी की वय वढती जाती है। चौसठ कलाओ मे वे प्रवीण हो जाते है, तदनन्तर अनेक राजकुमारियो के साथ उनका विवाह होता है। कुछ समय तक ऐश्वर्य भोगते हुए वे राज्य करते है । तदनन्तर उन्हे वैराग्य हो जाता है और वे दीक्षा ग्रहण कर लेते है। कवि दीक्षा का वर्णन करते हुए कहते है—

**एक सहस पुरुष साथे शिक्षा**
**श्री जिनवर जी लीनी दीक्षा।**

पूर्वभव मे शातिनाथ जी मेघरथ राजा थे। इनके वारे मे भी दानवीर शिवि जैसी घटना प्रसिद्ध है।

कही-कही पर कवि की कल्पना वडी सुन्दर वन पडी है, यथा—

**चालीस धनुष ऊँचो रे देही**
**वलि हेमवरणी उपमा रे कही।**
**दीठे दिल दरियाव ठरो**
**श्री शाति जिनेश्वर शान्ति करो ॥**

कवि शातिनाथ जी के शारीरिक सौन्दर्य का ऐसा वर्णन करता है जिससे पाठक के सम्मुख पढते समय एक चित्र सा खिंच जाता है। "दीठे दिल दरियाव ठरो" कहते ही उनका तरल व्यक्तित्व हिलोरे लेने लगता है। समुद्र की सी पवित्रता, शीतलता, गभीरता सभी उनके हृदय मे जैसे समाहित हो गई हो।

मनुष्य जन्म दुर्लभ है। यह मानव अनेक भवो मे गेद के समान घूमता हुआ[1] इस दुर्लभ एव मूल्यवान मानव भव मे पैदा हुआ है अत इस जन्म को यो ही समाप्त नही कर देना चाहिए। इस भवसागर को पार करना दुरन्त कार्य है। अत कवि ने आराध्यदेवो के नाम-स्मरण पर जोर दिया है। रचना के अन्त से नाम-स्मरण का महत्व भी वतलाया गया है —

**तुम नाम लिया सब काज सरे,**
**तुम नामे मुगति महल मले।**

---

१ ओ जीव राय ने रक थयो,
वलि नरक निगोदमा बहू रे रह्यो।
रडवडियो जिम गेडि दडो,
श्री शाति जिनेश्वर शाति करो ॥
—जयवाणी—६

तुम नामे सुभ भडार भरो
श्री शान्ति जिनेश्वर शाति करो ॥

अन्य रचनाओ के अन्त मे भी ऐसे ही भाव व्यक्त किये है ।[1]

"वडी साधु वन्दना"[2] नाम से कवि ने एक रचना की है इसमे अनेक आदर्श साधुओ का नाम-स्मरण किया गया है ।

चौसठ आदर्श सतियो का स्तवन भी कवि ने किया है ।

सस्थापरक स्तुतियो मे किसी व्यक्ति विशेप का नाम लेकर स्तुति नही की गई है, अपितु इन व्यक्तियो की स्तुति की गई है जो अपने आदर्श गुणो के कारण व्यक्ति से सस्था बन गए है, यथा अरिहन्त सिद्ध, साधु एव केवली प्ररुपित धर्म । 'चार मगल'[3] एक ही ऐसी रचना है जिसमे कवि ने अरिहन्त, सिद्ध, साधु एव धम की स्तुति की है ।

---

१ (क) ए चउवीसी जिनवर तणा
व्यावे हितकर नाम ।
रिख "जयमल्ल" इम बीनवे
पामे अविचल धाम ॥

—जयवाणी—३

(ख) श्री पास तणो शुद्ध नाम जपै
ज्यारा कर्म कट जावे आफाणी ।

—जयवाणी—१०

(ग) तुम नामे दु ख दोहग टले
तुम नामे मुगति सुख मिले ।

—जयवाणी—१०

(घ) इण यतियो सतियो ना, लीजै नित प्रति नाम ।
शुद्ध मनथी ध्यावो, एह तिरण नो ठाम ॥

—जयवाणी—२२

२ साधु वन्दनाएँ आकार के अनुसार तीन मानी गई है —
१ वडी साधु वन्दना २ छोटी साधु वन्दना
३ सवसे छोटी साधु वन्दना

३ यो मगल एक प्रकार का काव्य रूप है पर यह मगल विवाह मगल से भिन्न है । ये मगल लोक मे उत्तम एव शरण देने वाले है ।

प्रथम मगल मे अरिहन्त[1] की स्तुति की गई है। प्रत्येक व्यक्ति अरिहन्त पद को प्राप्त कर सकता है यदि वह चार प्रकार के कर्मो—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय एव अन्तराय का नाश कर दे। साधु एव तीर्थंकर दोनो ही अरिहन्त होते है। तीर्थकरो के ३४ अतिशय[2] और उनकी वाणी की पेतीस विशेपताएँ[3] वतलाई गई है।

---

१. ज्ञानावरणीय, दशनावरणीय, मोहनीय एव अन्तराय रूप चार सर्वघाती कर्म शत्रुओ का नाश करने वाले महापुरुप अरिहन्त कहलाते ह।

२ (१) तीर्थंकर देव के मस्तक और दाढी मूंछ के वाल वढते नही है। उनके शरीर के रोम और नख सदा अवस्थित रहते है।

(२) उनका शरीर स्वस्थ एव निर्मल रहता है।

(३) शरीर मे रक्त मांस गाय के दूध की तरह श्वेत होते है।

(४) उनके श्वासोच्छवास मे पद्म एव नीलकमल की अथवा पद्मक तथा उत्पलकुष्ट (गन्धद्रव्यविशेप) की सुगन्ध आती है।

(५) उनका आहार और निहार (शौच क्रिया) प्रच्छन्न होता है। चर्म-चक्षु वालो को दिखाई नही देता।

(६) तीर्थंकर देव के आगे आकाश मे धर्मचक्र रहता है।

(७) उनके ऊपर तीन छत्र रहते है।

(८) उनके दोनो ओर तेजोमय (प्रकाशमय) श्रेष्ठ चवर रहते ह।

(९) भगवान् के लिए आकाश के समान स्वच्छ, स्फटिक मणि का वना हुआ पादपीठ वाला सिंहासन होता है।

(१०) तीर्थकर देव के आगे आकाश मे वहुत ऊँचा हजारो छोटी-छोटी पताकाओ से परिमण्डित इन्द्रध्वज चलता है।

(११) जहाँ भगवान ठहरते हैं अथवा वैठते हैं वहाँ पर उसी समय पत्र, पुष्प और पल्लव से शोभित, छत्र, ध्वज, घटा और पताका सहित अशोक वृक्ष प्रकट होता है।

(१२) भगवान जहाँ विचरते है वहाँ का भूभाग वहुत समतल एव रमणीय हो जाता है।

(१३) भगवान के कुछ पीछे मस्तक के पास अतिभास्वर (देदीप्यमान) भामण्डल रहता है।

(१४) भगवान जहाँ विचरते ह वहाँ काँटे अधोमुख हो जाते ह।

(१५) भगवान जहाँ विचरते है वहाँ ऋतुएँ सुखस्पर्श वाली यानी अनुकूल हो जाती हैं।

(१६) भगवान जहाँ विचरते है वहाँ सवर्तक वायु द्वारा एक योजन पर्यन्त क्षेत्र चारो ओर से शुद्ध साफ हो जाता है।

(१७) भगवान जहाँ विचरते है वहाँ मेघ आवश्यकतानुसार बरस कर आकाश एव पृथ्वी मे रही हुई रज को शान्त कर देते है।

(१८) भगवान जहाँ विचरते है वहाँ जानुप्रमाण देवकृत पुष्प-वृष्टि होती है। फूलो के डठल सदा नीचे की ओर रहते है।

(१९) भगवान जहाँ विचरते है वहाँ अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध नही रहते।

(२०) भगवान जहाँ विचरते है वही मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध प्रगट होते है।

(२१) देशना देते समय भगवान का स्वर अतिशय हृदयस्पर्शी होता है और एक योजन तक सुनाई देता है।

(२२) तीर्थकर देव अर्द्धमागधी भाषा मे धर्मोपदेश करते है।

(२३) उनके मुख से निकली हुई अर्द्धमागधी भाषा मे यह विशेषता होती है कि आर्य अनार्य सभी मनुष्य एव मृग, पशु, पक्षी और सरीसृप जाति के तिर्यच प्राणी उसे अपनी भाषा समझते है और वह उन्हे हितकारी, सुखकारी एव कल्याणकारी प्रतीत होती है।

(२४) पहले से ही जिनके वैर बँधा हुआ है ऐसे भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव प्रभु के चरणो मे आकर अपना वैर भूल जाते है और शान्तचित्त होकर धर्मोपदेश सुनते है।

(२५) तीर्थंकर के पास आकर अन्यतीर्थी भी उन्हे वन्दना करते है।

(२६) तीर्थंकर के समीप आते ही अन्यतीर्थी निरुत्तर हो जाते है।

जहाँ-जहाँ भी तीर्थकर देव विहार करते है वहाँ पर पच्चीस योजन अर्थात् सौ कोस के अन्दर—

(२७) ईति-चूहे आदि जीवो से धान्यादि का उपद्रव नही होता।

(२८) मारी अर्थात् जनसहारक प्लेग आदि उपद्रव नही होते।

(२९) स्वचक्र का भय (स्वराज्य की सेना से उपद्रव) नही होता।

(३०) परचक्र का भय (पर राज्य की सेना से उपद्रव) नही होता।

---

(३१) अधिक वर्षा नही होती।

(३२) वर्षा का अभाव नही होता।

(३३) दुर्भिक्ष-दुष्काल नही पडता है।

(३४) पूर्वोत्पन्न उत्पात तथा व्याधियाँ भी शान्त हो जाती है।
(समवायाग सूत्र, ३४)

—श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, भाग ७ पृ० स० ६८,७०

३ तीर्थंकर देव की वाणी सत्य वचन के अतिशयो से सम्पन्न होती हैं। सत्यवचन के पैंतीस अतिशय है—

(१) सस्कारवत्व
(२) उदात्तत्व
(३) उपचारापेतत्व
(४) गभीर शब्दता
(५) अनुनादित्व
(६) दक्षिणत्व
(७) उपनीतरागत्व
(८) महार्थत्व
(९) अव्याहतपौर्वापर्यत्व
(१०) शिष्टत्व
(११) असन्दिग्धत्व
(१२) अपहृतान्योत्तरत्व
(१३) हृदयग्राहित्व
(१४) देशकालाव्यतीतत्व
(१५) तत्वानुरूपत्व
(१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्व
(१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्व
(१८) अभिजातत्व
(१९) अतिस्निग्ध मधुरत्व
(२०) उदारत्व
(२१) अपरमर्मवेधित्व
(२२) अर्थधर्माभ्यासानपेतत्व
(२३) परनिन्दात्मोत्कर्ष विप्रयुक्तत्व
(२४) उपगतश्लाघत्व
(२५) अनपनीतत्व
(२६) उत्पादिताविच्छिन्नकुतूहलत्व
(२७) अद्भुतत्व
(२८) अनतिविलम्बितत्व
(२९) विभ्रमविक्षेपकिलिकिंचितादि राहित्य
(३०) विचित्रत्व
(३१) आहितविशेषत्व
(३२) साकारत्व
(३३) सत्वपरिगृहीतत्व
(३४) अपरिखेदित्व
(३५) अव्युच्छेदित्व

(समवयाग सूत्र ३५ टीका)

वही पृ० ७१-७३

इन सब गुणो एव अतिशयो के कारण कवि अरिहन्त की स्तुति करने मे स्वय को असमर्थ पाता है। उसकी यह असमर्थता इन पक्तियो मे स्पष्ट झलक रही है—

**गुण अरिहन्त ना अति घणा ए, किम कहूँ जीभडी एक तो।**
**पूरा कह्यो ना सके ए, मिले जीभ अनेक तो॥**

ऐसे अरिहन्त के स्मरण से सभी विघ्न दूर हो जाते है। कवि कितनी दृढता से अपनी बात का प्रतिपादन कर रहा है—

**मगल पहिलो अरिहन्त नो ए भावसू भणो नरनार तो।**
**विघन दूरे टले ए, पामिए भव-जल पार तो॥**

दूसरा मगल सिद्धो[1] का है। जैसा कि नाम से ही विदित होता है कि इन्हे आठो कर्मो[2] को क्षय करने के बाद सिद्धि मिल जाती है। ये आवागमन के चक्कर से सर्वथा मुक्त हो जाते है।[3] राग-द्वेष को ये जीत चुके होते है। केवल ज्ञान एव केवल दर्शन ये दो ही वस्तु उनके समस्त गुणो को अपने मे समाविष्ट कर लेती है।

कवि ने सिद्धो के स्मरण से होने वाले लाभ की ओर इस प्रकार सकेत किया है।

**बीजो मगल शुद्ध मन ध्याइये, मुक्ति तणा दातार जी।**
**जे भव्य जीव हृदय मे धरसी ज्यारौ खेवौ पार जी॥[4]**

साधु भी एक मगल है। साधु के व्यक्तित्व का दिग्दर्शन कवि ने दो ही पक्तियो मे बहुत सुन्दरता से कर दिया है।

---

१ सर्व कर्मो का क्षय करके जो जन्म-मरण रूप ससार से मुक्त हो चुके है, उन्हे सिद्ध कहते है।

२ (१) ज्ञानावरणीय (२) दर्शनावरणीय
(३) वेदनीय (४) मोहनीय
(५) आयु (६) नाम
(७) गोत्र (८) अन्तराय

३ दगध बीज जिम धरती व्हाया नहिं मेले अकूर जी।
तिम हीज सिद्ध जी जन्म मरण री करदी उत्पत्ति दूर जी॥
जयवाणी—२८

४ जयवाणी—२७

**पॉच महाव्रत[१] पालवेजो, पाले हे पचाचार ।[२]**
**पॉच समिते[३] समिता रहे जी तीनो ही गुप्ति[४] दयाल ॥**

ये सम्पूर्ण मोह-माया त्याग कर ग्रामानुग्राम विचरण करते हे । सब जीवो पर दया रखते हे । ससार-सागर मे रहते हुए भी कमल के समान सासारिक ऐश्वय एव माया रूपी कीचड से निर्लिप्त रहते है ।

**सदा ही काल ऊँचो रहेजी कमल नो फूल जल माहि ।**
**तिम साधु ऊचा रहेजी, लिप्त ससार मे नाहि ॥[५]**

कठोर तप करते हुए अपनी देह को ये ककाल मात्र रहने देते ह । इनमे किसी भी प्रकार की कामना शेप नही रह जाती ऐसे साधुओ के स्मरण-मात्र से ही शान्ति मिलती है ।

चौथा एव अन्तिम मगल केवली प्ररूपित धम[६] हे । इस धर्म के प्रमुख अग चार प्रकार हे —

(१) दान
(२) शील

---

१ (१) प्राणातिपात विरमण (२) मृपावाद विरमण
(३) अदत्तादान विरमण (४) मैथुन विरमण
(५) परिग्रह विरमण महाव्रत

—जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, भाग १ पृ० ३२१,३२२

२ (१) ज्ञानाचार (२) दशनाचार
(३) चारित्राचार (४) तप आचार
(५) वीर्याचार

—वही पृ० ३३२

३ (१) ईर्या समिति (२) भापा समिति
(३) एपणा समिति (४) आदान भन्ड मात्र निक्षेपण समिति
(५) उच्चार प्रस्रवण खेल जल्ल सिघाण परिस्थापनिका समिति ।

—वही पृ० ३३०,३३१

४ (१) मनोगुप्ति (२) वचनगुप्ति
(३) काय गुप्ति —वही पृ० ९२

५ जयवाणी—३१

६ पूण ज्ञान सम्पन्न केवली भगवान द्वारा प्ररूपित श्रुत चारित्र रूप धर्म केवलि प्ररूपित धर्म हे ।

—श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, भाग ५, पृ० ९४,९५

(३) तप
(४) भाव

इस केवली प्ररूपित धर्म के मुख्यत पाँच महाव्रत एव एक व्रत है—रात्रि भोजन विरमण। साधुओ को इन छहो का पालन करना होता है। कवि ने एक स्थान पर इस धर्म के सम्बन्ध मे कहा है —

**झीणो कह्यो केवली ए, उण्डो घणो अथाग।**

चारो मगल के स्मरण का एक साथ लाभ बताते हुए कवि ने कहा है—

**मगल नाम चारो कह्या, भणो सुणो चित्तलाय।**
**मगल एक आराधिया, मुक्ति सुखो मे जाय॥**

इस प्रकार कवि ने व्यक्तिपरक एव सस्थापरक दोनो ही प्रकार के स्तुति-पुष्प अर्पण किये है। पर कवि मे कही भी भक्त कवियो की सी दीनता, याचना, हीनता एव भाव-विह्वलता के दर्शन नही होते। न तो कवि तुलसी के समान राम के दरबार मे अपने हृदय की "विनयपत्रिका" को खोलकर रखता है, न सूर की भाँति अपने आराध्य को चुनौती देता है कि "हो तो पतित सात पीढिन को पतिते ह्वै निस्तरि हो'। इसका प्रधान कारण कवि का एक सिद्धान्त विशेष मे आस्थावान बने रहना है।[1]

## २ उपदेशपरक रचनाएँ

सन्त कवि जयमल्लजी के लिए कविता साध्य नही थी, अपितु साधन थी। उपदेश प्रधान प्रवृत्ति होने के कारण ही ये कवि कर्म की ओर प्रवृत्त हुए। लोकोत्तर जीवन को सफल बनाने के उद्देश्य से ही इन्होने मुख्यत इन उपदेश-परक रचनाओ की रचना की है। इन्हे हम दो भागो मे विभक्त कर सकते है

(१) व्यावहारिक उपदेश
(२) तात्विक उपदेश

### (१) व्यावहारिक उपदेश

व्यावहारिक उपदेशो मे कवि ने हेय बातो को छोडने और उपादेय बातो को ग्रहण करने की देशना दी है। हेय बातो मे मुख्य है कषाय। यह चार

---

१ मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, डा० नरेन्द्र भानावत का लेख, आचार्य जयमल्लजी व्यक्तित्व एव कृतित्व, पृ० १४६-१५०

पाँच महाव्रत[1] पालवेजी, पाले है पचाचार ।[2]
पाँच समिते[3] समिता रहे जी तीनो ही गुप्ति[4] दयाल ॥

ये सम्पूर्ण मोह-माया त्याग कर ग्रामानुग्राम विचरण करते है । सब जीवो पर दया रखते है । ससार-सागर मे रहते हुए भी कमल के समान सासारिक ऐश्वर्य एव माया रूपी कीचड से निर्लिप्त रहते है ।

सदा ही काल ऊँचो रहेजी कमल नो फूल जल माहि ।
तिम साधु ऊचा रहेजी, लिप्त ससार मे नाहि ॥[5]

कठोर तप करते हुए अपनी देह को ये ककाल मात्र रहने देते है । इनमे किसी भी प्रकार की कामना शेष नही रह जाती ऐसे साधुओ के स्मरण-मात्र से ही शान्ति मिलती है ।

चौथा एव अन्तिम मगल केवली प्ररूपित धर्म[6] है । इस धर्म के प्रमुख अग चार प्रकार है —

(१) दान
(२) शील

---

१ (१) प्राणातिपात विरमण (२) मृषावाद विरमण
(३) अदत्तादान विरमण (४) मैथुन विरमण
(५) परिग्रह विरमण महाव्रत
—जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, भाग १ पृ० ३२१,३२२

२ (१) ज्ञानाचार (२) दर्शनाचार
(३) चारित्राचार (४) तप आचार
(५) वीर्याचार
—वही पृ० ३३२

३ (१) ईर्या समिति (२) भाषा समिति
(३) एषणा समिति (४) आदान भन्ड मात्र निक्षेपण समिति
(५) उच्चार प्रस्रवण खेल जल्ल सिघाण परिस्थापनिका समिति ।
—वही पृ० ३३० ३३१

४ (१) मनोगुप्ति (२) वचनगुप्ति
(३) काय गुप्ति —वही पृ० ९२

५ जयवाणी—३१

६ पूर्ण ज्ञान सम्पन्न केवली भगवान द्वारा प्ररूपित श्रुत चारित्र रूप धर्म केवलि प्ररूपित धर्म है ।
—श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, भाग ५, पृ० ९४,९५

(३) तप
(४) भाव

इस केवली प्ररुपित धर्म के मुख्यत पाँच महाव्रत एव एक व्रत है—रात्रि भोजन विरमण। साधुओ को इन छहो का पालन करना होता है। कवि ने एक स्थान पर इस धर्म के सम्बन्ध मे कहा है —

**झीणो कह्यो केवली ए, उण्डो घणो अथाग।**

चारो मगल के स्मरण का एक साथ लाभ बताते हुए कवि ने कहा है—

**मगल नाम चारो कह्या, भणो सुणो चित्तलाय।**
**मगल एक आराधिया, मुक्ति सुखो मे जाय॥**

इस प्रकार कवि ने व्यक्तिपरक एव सस्थापरक दोनो ही प्रकार के स्तुति-पुष्प अर्पण किये है। पर कवि मे कही भी भक्त कवियो की सी दीनता, याचना, हीनता एव भाव-विह्वलता के दर्शन नही होते। न तो कवि तुलसी के समान राम के दरबार मे अपने हृदय की "विनयपत्रिका" को खोलकर रखता है, न सूर की भाँति अपने आराध्य को चुनौती देता है कि "हो तो पतित सात पीढिन को पतिते ह्वै निस्तरि हो'। इसका प्रधान कारण कवि का एक सिद्धान्त विशेष मे आस्थावान बने रहना है।[1]

## २ उपदेशपरक रचनाएँ

सन्त कवि जयमल्लजी के लिए कविता साध्य नही थी, अपितु साधन थी। उपदेश प्रधान प्रवृत्ति होने के कारण ही ये कवि कर्म की ओर प्रवृत्त हुए। लोकोत्तर जीवन को सफल बनाने के उद्देश्य से ही इन्होने मुख्यत इन उपदेश-परक रचनाओ की रचना की है। इन्हे हम दो भागो मे विभक्त कर सकते है

(१) व्यावहारिक उपदेश
(२) तात्विक उपदेश

### (१) व्यावहारिक उपदेश

व्यावहारिक उपदेशो मे कवि ने हेय बातो को छोडने और उपादेय बातो को ग्रहण करने की देशना दी है। हेय बातो मे मुख्य है कपाय। यह चार

---

१ मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रथ, डा० नरेन्द्र भानावत का लेख, आचार्य जयमल्लजी व्यक्तित्व एव कृतित्व, पृ० १४६-१५०

प्रकार का है—क्रोध, मान, माया व लोभ। 'ब्रह्मचर्य विपयक स्तवन' मे कवि इन्हे छोडने व शील पालने की बात कहता है

**क्रोध, मान, माया लोभ ने त्यागी,**
**शील पाले नव वाडी रे ॥**

कवि कुसगत करने के लिए मना करता है। कुबुद्धि लोगो का साथ अहितकारी होता है अत उनका साथ छोडकर शील और समता के भावो का पालन करना चाहिये —

**समता भावे शीलज पीले,**
**कुबुद्धि सग निबारी रे।**

पच—महाव्रत एव सम्यकत्व को ग्रहण करने के लिए कवि का उद्‌बोधन है।

**समकित ने चोखो आराधै**
**पच महाव्रत धारी रे।**

मानव को क्रोध नही करना चाहिये। क्रोध करने से दु ख होता है एव क्लेश की वृद्धि होती है। अत मानव को क्षमा-धर्म ही अपनाना चाहिये। किसी के प्रति बुरा भाव नही रखना चाहिये।

**क्षमा किया सुख पामिवे,**
**क्रोध किया दुख होई रे।**
**क्लेस टले क्षमा किया**
**क्षमा थी शिव-सुख जोईरे ॥**

कवि ने मानव को धिक्कारा है कि हे मानव ! तू मोह-निद्रा मे क्यो सोया हुआ है ? इतने दु खो का भागी क्यो बन रहा है ? हे आत्मन् ! तू जाग, तेरे द्वार पर काल दूल्हे के समान बाहर खडा है। जिस प्रकार दूल्हा दुल्हिन का वरण कर उसे अपने साथ ले जाता है और उस दुल्हिन का अपने घर से वैसा कोई सम्बन्ध नही रह जाता उसी प्रकार यह काल तुझे कुछ क्षणो मे ही ले जायेगा और तेरा इस ससार से कोई सम्बन्ध नही रहेगा।

**किम दुख पावे रे मानवी सूतो मोहनी रे नीद।**
**काल खडो थोरे बारणें जिम तोरण आयो बीद ॥**

"यह मेला" शीर्षक कविता मे सासारिक सुखो की क्षणभगुरता का वर्णन करते हुए कवि ने माँस-भक्षण, मदिरापान, परनारी-रमण आदि से दूर रहने की प्रेरणा दी है।

मास खाय मदिरा पिये, परनारी सग आय।
ते नर ढोला वाजता, पडे न क रे माय॥

कनक एव कामिनी ये दोनो ही साधना-मार्ग मे वाधक माने गये है। इनमे फॅसने के वाद आत्मा का कल्याण सम्भव नही। ज्यो-ज्यो वह इनसे निकलने का प्रयत्न करता है त्यो-त्यो वह और अधिक फँसता जाता है।

एक कनक दूजो कामनी
फन्द कह्या जिनराज रे।
इण फन्द मे फसिया रहे,
तो मरने दुर्गति जाय रे॥

सात व्यसनो को त्यागने की भी कवि प्रेरणा देता है —

व्यसन सारा जुवटा मै रमे,
सर्व वर्ष धूल मांहि गमे।
हार गया धन ओरा साल॥

कवि के अनुसार सच्चा शूरवीर वही है जो किसी मे वैर-भाव नही रखता। क्षमा शील धैर्यवान व्यक्ति ही इस भव-सागर को पार कर सकता है—

रीस न राखे केह सु साचा सूरवीरो रे।
भव-सागर हेला तिरे धरसी सन मे धीरो रे॥

गुण, दया, क्षमा, सारल्य, प्रीति, सतोष आदि गुण ही मानव को आत्म-कल्याण की ओर अग्रसर करने वाले है। कवि ने आध्यात्मिक-जागरण की प्रेरणा देते हुए वडे ओजपूर्ण शब्दो मे कहा है—

दया-रणसिंघो, वाजियो, जागो जागो नर-नार।
मुगत-नगर मे चालणो तुमे, वेगा हुइ जो त्यार॥

कवि मानव-शरीर की नश्वरता की ओर भी सकेत करता है। अनेक भवो मे भ्रमण करते हुए उसे यह दुर्लभ मानव-शरीर प्राप्त हुआ है। इस मानव-शरीर का वडा महत्व है क्योकि प्रत्येक मानव इस काल मे ही सद्कार्यों से ईश्वरत्व को प्राप्त कर सकता है। इस काल मे किये गये कार्यों से ही उसका अगला भव निश्चित होगा। अत यह काल वीते हुए काल एव आने वाले काल के वीच की कडी है। "मूरख पच्चीसी" शीर्षक रचना मे कवि जीवन की क्षण-भगुरता वताते हुए कहता है—

**डाभ अणी जल बिन्दुओ जेहवो सध्यानो वान ।**
**अथिर ज जाणो रे थारो आउखो जिम पाको पीपलपान ।।**

यह ससार एक मेले के ममान हे । यह ससारी आत्मा परदेशी के समान है, ससार उसका परदेश है । जिस प्रकार परदेशी को पत्र मिलते ही किसी भी बाधा एव विघ्न की चिन्ता किये विना, परदेश से स्वदेश की ओर लोटना पडता है, उसी प्रकार ससारी आत्मा को, आयुष्य की समाप्ति पर, एक भव से दूसरे भव मे जाना पडता है—

**परदेशी परदेश मे किण सूॅ करे रे सनेह ।**
**आया कागद उठ चले, आधी गिणे न मेह ।।**

कवि को यह जग हटवाडे के समान लगता है । इस हटवाडे मे सभी मम्बन्ध अस्थिर और स्वार्थो पर टिके होते है । कवि का कहना है कि सच्चा मेला तो धर्म का है, जो हर परिस्थिति मे अविचल बना रहता है—

**काचो सगपण कुटम्ब नो मिल मिल बिखर जाय ।**
**साचो मेलो धर्म नो अविचल मेलो थाय ।।**

इस नश्वर ससार मे मानव को किसी भी वस्तु पर अभिमान नही करना चाहिये । यह शरीर, धन एव यौवन सभी अस्थिर हे । कोई भी मानव मरते समय एक भी वस्तु अपने सग नही ले जा पाता । अत कवि का सन्देश है—

**तन, धन, जोवन कारमो, न करो कोई गुमान ।**

कवि की पुनर्जन्म पर आस्था है । उसके अनुसार पिछले जन्म मे किये गये अच्छे एव बुरे कार्यो का फल भोगने के लिए फिर जन्म लेना होता है । इस जन्म मे किये गये कार्यों के आधार पर ही अगले भव की गति निश्चित होती है । यदि एक व्यक्ति पालकी मे सवारी करता है और उस जैसा ही दूसरा व्यक्ति नगे पॉवो चलता है तो उसके पीछे जन्म मे किये गये कर्मो का ही परिणाम है । अत कवि इस जन्म मे धर्म अर्थात् अच्छे कर्म करने की प्रेरणा देता है—

**पाप करणी सू दु ख पडे जी धरम करणीं सू सुख ।**
**करे जिसा फल भोगवे जी रहे न किण री रूख ।।**

कवि ने एक स्थान पर अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए दूसरो का अहित करने वालो की खूब खबर ली है—

आपणो पेट भरण के ताई,
पर घर नाखे ढायो रे।
परपूठे तो वरतज वाठे,
मूडे करे नरमायो रे॥

कवि जाति-पाति का विरोधी है। जातिवाद की भर्त्सना करते हुए कवि ने मानव को चेतावनी दी है कि ऊँचे कुल मे जन्मा व्यक्ति भी यदि पापाचरण करता है तो उसे उच्चकुलीन व्यक्ति नही कहा जा सकता, साथ ही यदि निम्नकुल मे जन्मी आत्मा यदि सदाचरण करती है तो वह उच्चकुलीन ही मानी जायेगी—

ऊँचा कुल आय ऊपनो रे,
एतो हुआ रहे वड भीचो रे।
माठा करतब लम्पटी अति घृणा,
ते तो लक्षण कही जे नीचो रे॥

नीचे कुल आय ऊपना,
पिण ज्ञान विवेक शुद्ध धारो रे।
तिका नीचा ही ऊँचा कह्या,
सुद्ध समकित पामी सारो रे॥

कवि की चेतावनी है कि जब तक तेरी इन्द्रियाँ शिथिल नही हुई है तेरे शरीर मे जरा ने आकर बसेरा नही किया है और रोग ने भी उसे अपना घर नही बनाया है तब तक तू धर्माचरण मे सलग्न हो जा। किसी की निन्दा एव व्यर्थ चर्चा मे मत फस। यदि तू पर-भव के कष्टो से डरता है तो किसी से राग-द्वेष मत रख—

जिहा लग पाचू इन्द्रिय रे परवडी,
जरा न व्यापी रे आय।
देह माहि रे रोग न फेलियो,
तिहा लग धर्म समाय॥

निन्दा विकथा रे मत कर पारकी,
आप सामो रे देख।
जो तू पर-भव सो डरतो रहे,
तो किण सू मत कर द्वेष॥

जयमल्लजी ने कबीर की भाँति ही कई स्थानो पर मानव को दुष्प्रवृत्तियो के लिए फटकारा है, पर उनमे खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति प्रमुख नही है ।

कबीर परनारी के लिए लिखते है—

**पर-नारी राता फिरें, चोरी बिढता खाँहि ।**
**दिवस चारि सरसा रहे, अति समूला जाँहि ।**

जयमल्लजी भी इसी बात को इस प्रकार प्रस्तुत करते है—

**घर नारी छटे नही तो परनारी तो छाँड रे ।**
**परनारी ना सग थी घणा हुआ छै भाँड रे ।।**

**परनारी नी प्रीत सू पाणी उतर जाय रे ।**
**खिण एक सुख रे कारणे, मार अनन्ती खाय रे ।।**

कवि के मतानुसार बूढे व्यक्ति यदि धर्म के बिना ही काल व्यतीत कर रहे है तो वे बूढे होने पर भी बालक ही है । "शिक्षा पद" नामक रचना मे कवि ने कहा है—

**नाटक गीत तमाशा देखण**
**तुरत हरक से जाई रे ।**
**धर्मकथा साधा रे दर्शन**
**जाता पग लडखडाई रे ।**

कवि की "दीवाली" भी आध्यात्मिक दीवाली है । यदि दीवाली मनानी है तो दया रूपी दीपक मे सम्यक्त्वरूपी ज्योति को प्रज्वलित करना चाहिये ताकि मिथ्यात्वरूपी अधकार नष्ट हो जाय ।

**दया रूपी दिवलो करो, सवेग रूपणी बाट ।**
**समगत ज्योत उजवाल ले मिथ्या अधारौ जाय फाट ।।**

दीवाली पर होने वाले सभी सस्कारो एव रीति-रिवाजो का धर्म से सम्बन्ध जोडकर कवि ने जो रूपक बाँधा है, वह बडा सुन्दर बन पडा है ।

दीवाली के दिन पूजे जाने वाले बहीखातो की तरह धर्म पूजा, मकान आदि की स्वच्छता की तरह आत्म-शुद्धि तथा स्वजनो के प्रति किये गये स्नेह की तरह धर्म-स्नेह किये जाने पर कवि ने विशेप बल दिया है—

**पर्व दिवाली ने दिने पूजे वही लेखण ने दोत ।**
**ज्यूँ तू धर्म न पूजले, दीपे अधिकी जोत ।।**

पर्व दिवाली जाण ने, उजवाले हवेली ने हाट ।
इम तू व्रत उजवाल ले, वधे पुना रा ठाठ ॥

धराधान त्रिया वालक, सजन वहाला लागे तोय ।
जैसो नेहकर धर्म सू ज्यो मुगति तणा सुख होय ॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि की व्यावहारिक उपदेशपरक रचनाएँ आत्म-विकासी एव नैतिकता की ओर अग्रसर करने वाली है। यह सही है कि इन नीतिपरक मुक्तको मे कवित्व की अपेक्षा उपदेशो की अधिक प्रधानता है। अन्य नीतिकार कवियो ने जहाँ सूक्तियो के माध्यम से लोक-व्यवहार की बाते कहकर लोकजीवन को सुखी बनाने का उपक्रम किया है। वहाँ कवि जयमल्लजी का लक्ष्य लोकोत्तर जीवन को अधिक सफल बनाने का रहा है। एक ने लौकिक पक्ष के विविध रहस्यो का उद्घाटन किया है तो दूसरे ने आत्म-प्रदेश की यात्रा मे पडने वाले विभिन्न स्थलो का पर्यटन। एक की दृष्टि यथार्थ-मूलक अधिक रही है तो दूसरी की पूर्णत आदर्शमूलक।[1]

(२) तात्विक उपदेश

कवि की कतिपय उपदेशपरक रचनाओ मे जैन-दर्शन के तत्वो की भी चर्चा की गयी है। "इरियावही नी सज्झाय", "चौवीस दण्टक नी सज्झाय", "पन्द्रह परमाधर्मी देव", "शल्य छत्तीसी", "जीवा बयालिसी" आदि रचनाओ के नाम तात्विक उपदेशपरक रचनाओ मे प्रमुख है।

"इरियावही नी सज्झाय" मे कवि ने अनेक प्रकार मे जीवो की गणना कराई है। इस ससार मे "कुल सहस चौवीस एक सौ वीस धुर अठारे लाख" जीव हिंसा के पाप मे मुक्त होने के प्रकार है। इन्हे किसी प्रकार मे सताना नही चाहिए। यदि इनके साथ किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार हो भी जाये तो उसके लिए "इरियावही प्रतिक्रमण" करने का विधान किया गया है।

भवियण इरियावही पडिकमिये रूडो धर्म हिय मे धरिये।
प्राणी पर भव सेती डरिये, जाणी जरा तो सम्वर[2] करिये ॥

इस जन्म मे किये गये पापो के प्रायश्चित के लिए यह प्रत्याख्यान

---

१ डा० नरेन्द्र भानावत आ० जयमल्लजी व्यक्तित्व एव कृतित्व इ० स्मृ० ग्रथ—१५१

२ समत्व के कारण प्राणातिपात आदि जिससे रोके जायँ, वह सवर है।
—श्री जैन सिद्धात बोल सग्रह भा १, पृ० २८५

जयमल्लजी ने कबीर की भाति ही कई स्थानो पर मानव को दुष्प्रवृत्तियो के लिए फटकारा है, पर उनमे खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति प्रमुख नही है।

कबीर परनारी के लिए लिखते है—

**पर-नारी राता फिरें, चोरी बिढता खांहि।**
**दिवस चारि सरसा रहे, अति समूला जांहि।**

जयमल्लजी भी इसी बात को इस प्रकार प्रस्तुत करते है—

**घर नारी छटे नहीं तो परनारी तो छांड रे।**
**परनारी ना सग थी घणा हुआ छै भॉड रे॥**

**परनारी नी प्रीत सू पाणी उतर जाय रे।**
**खिण एक सुख रे कारणे, मार अनन्ती खाय रे॥**

कवि के मतानुसार बूढे व्यक्ति यदि धर्म के बिना ही काल व्यतीत कर रहे है तो वे बूढे होने पर भी बालक ही है। "शिक्षा पद" नामक रचना मे कवि ने कहा है—

**नाटक गीत तमाशा देखण**
**तुरत हरक से जाई रे।**
**धर्मकथा साधा रे दर्शन**
**जाता पग लडखडाई रे।**

कवि की "दीवाली" भी आध्यात्मिक दीवाली है। यदि दीवाली मनानी है तो दया रूपी दीपक मे सम्यक्त्वरूपी ज्योति को प्रज्वलित करना चाहिये ताकि मिथ्यात्वरूपी अधकार नष्ट हो जाय।

**दया रूपी दिवलो करो, सवेग रूपणी वाट।**
**समगत ज्योत उजवाल ले मिथ्या अधारौ जाय फाट॥**

दीवाली पर होने वाले सभी सस्कारो एव रीति-रिवाजो का धर्म से सम्बन्ध जोडकर कवि ने जो रूपक बॉधा है, वह बडा सुन्दर बन पडा है।

दीवाली के दिन पूजे जाने वाले वहीखातो की तरह धर्म पूजा, मकान आदि की स्वच्छता की तरह आत्म-शुद्धि तथा स्वजनो के प्रति किये गये स्नेह की तरह धर्म-स्नेह किये जाने पर कवि ने विशेष बल दिया है—

**पर्व दिवाली ने दिने पूजे बही लेखण ने दोत।**
**ज्यूं तू धर्म न पूजले, दीपे अधिकी जोत॥**

पर्व दिवाली जाण ने, उजवाले हवेली ने हाट।
इम तू व्रत उजवाल ले, बधे पुना रा ठाठ ॥

धराधान त्रिया बालक, सजन वहाला लागे तोय।
जैसो नेहकर धर्म सू ज्यो सुगति तणा सुख होय ॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि की व्यावहारिक उपदेशपरक रचनाएँ आत्म-विकासी एव नैतिकता की ओर अग्रसर करने वाली है। यह सही है कि इन नीतिपरक मुक्तको मे कवित्व की अपेक्षा उपदेशो की अधिक प्रधानता है। अन्य नीतिकार कवियो ने जहाँ सूक्तियो के माध्यम से लोक-व्यवहार की बाते कहकर लोकजीवन को सुखी बनाने का उपक्रम किया है। वहाँ कवि जयमल्लजी का लक्ष्य लोकोत्तर जीवन को अधिक सफल बनाने का रहा है। एक ने लौकिक पक्ष के विविध रहस्यो का उद्घाटन किया है तो दूसरे ने आत्म-प्रदेश की यात्रा मे पडने वाले विभिन्न स्थलो का पर्यटन। एक की दृष्टि यथार्थ-मूलक अधिक रही है तो दूसरी की पूर्णत आदर्शमूलक।[1]

### (२) तात्विक उपदेश

कवि की कतिपय उपदेशपरक रचनाओ मे जैन-दर्शन के तत्वो की भी चर्चा की गयी है। "इरियावही नी सज्झाय", "चौबीस दण्डक नी सज्झाय", "पन्द्रह परमाधर्मी देव", "शल्य छत्तीसी", "जीवा बयालिसी" आदि रचनाओ के नाम तात्विक उपदेशपरक रचनाओ मे प्रमुख है।

"इरियावही नी सज्झाय" मे कवि ने अनेक प्रकार से जीवो की गणना कराई है। इस ससार मे "कुल सहस चौवीस एक सो वीस धुर अठारे लाख" जीव हिंसा के पाप से मुक्त होने के प्रकार हे। इन्हे किसी प्रकार से सताना नही चाहिए। यदि इनके साथ किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार हो भी जाये तो उसके लिए "इरियावही प्रतिक्रमण" करने का विधान किया गया है।

भवियण इरियावही पडिकमिये रूडो धर्म हिय मे धरिये।
प्राणी पर भव सेती डरिये, जाणी जरा तो सम्बर[2] करिये ॥

इस जन्म मे किये गये पापो के प्रायश्चित के लिए यह प्रत्याख्यान

---

१ डा० नरेन्द्र भानावत आ० जयमल्लजी व्यक्तित्व एव कृतित्व ह० स्म० ग्रथ—१५१

२ कर्मबन्ध के कारण प्राणातिपात आदि जिससे रोके जायँ, वह सवर है।
—श्री जैन सिद्धात बोल सग्रह भाग १, पृ० २८५

आवश्यक है। इस प्रत्याख्यान से यह पापी मानव भी स्वर्ग का अधिकारी वन सकता है।

> इरियावही साचे मन गुण ने, सरदहणा मे रेणो।
> अपना पाप उतारण हेते, मिच्छामि दुक्कड देणो॥
> उपयोग सहित इरियावही गुण ने सरधमा मे आसी।
> कहे रिख "जयमल्ल" सुणो नरनारी, अमरापुर मे जासी॥

मनुष्य को यह दुर्लभ मानव भव मिला है। इस भव मे ही वह सद्कार्य करके अपने आगे आने वाले सभी अवस्थान्तरो को सुधार सकता है। भगवान महावीर स्वामी ने तीर्थंकर होने से पूर्व सत्ताईस भव पाये थे। इन सत्ताईस भवो मे से जिन्होने अहिंसा, जीव-दया, अपरिग्रह आदि तत्वो का यथावसर अनुपालन किया और तव कही वे अरिहन्त जैसे विशिष्ट पद के भागी बन सके। पापी जीव नरक मे जाता है। नरक सात[1] बताये गये है। पापाचरण करने वाले व्यक्ति को इनका भागी बनना पडता है। पापाचरण की सीमाओ के अनुसार ही सात नरको का विभाजन किया गया है। भिन्न-भिन्न नरको मे भिन्न-भिन्न प्रकार के घोर कष्ट दिये जाते है। नरक मे ये कष्ट पन्द्रह परमा-धर्मी देवो द्वारा दिये जाते हैं। ये देव मानव के पापाचरण के प्रकार को देखकर दारुण कष्ट देते है। प्रथम परमाधर्मी देव द्वारा दिये जाने वाले कष्टो का एक नमूना देखिये—

> "आमे" देवता कोप करी रे लाल,
> हण ने उछाले आकाश हो।
> पडता ने झेले त्रिशूल सू रे लाल,
> देवे पापी ने त्रास हो॥

इसी प्रकार अन्य परमाधर्मी देव भी घोर कष्ट देते ह। कवि ने "पन्द्रह परमाधर्मी देव" नामक रचना मे तो नरक के घोर कष्टो एव वेदनाओ का

---

१ घोर पापाचरण करने वाले जीव अपने पाप का फल भोगने के लिए अधोलोक के जिन स्थानो मे पैदा होते है, उन्हे नरक कहते है। वे नरक सात पृथ्वियो मे विभक्त हैं।

(१) घम्मा (२) वसा (३) सीला (४) अजना (५) रिट्ठा (६) मघा (७) माघवई

—वही, भाग-२ पृ० ३१४ (प्रवचन द्वार)

वणन किया है एव अन्त मे इन कष्टो का भय दिखाकर धर्माचरण करने की प्रेरणा दी है—

> ऐसा दुखा सू डरपने रे लाल,
> कीजो धरम सू प्रेम हो।
> सत शील दया आदरो रे लाल,
> रिख "जयमल्ल" कहे एम हो॥

कवि ने शल्यो[1] से दूर रहने की शिक्षा दी है। कपट भाव रखना एव दूसरो पर आरोप लगाना माया शल्य हे। राजा, देवता आदि की ऋद्धि को देखकर यह अध्यवसाय करना कि मेरे द्वारा किये गये ब्रह्मचर्य, तप आदि अनुष्ठानो के फलस्वरूप मुझे भी ये ऋद्धियाँ प्राप्त हो, निदानशल्य है। विपरीत श्रद्धा का होना मिथ्यादर्शन शल्य हे। "शल्य छत्तीसी" शीर्षक रचना मे कवि ने इनका वर्णन किया हे।[2]

सुखमालिका, द्रौपदी, नन्दन मणिहारा, जमाली अभीचकुमार आदि ने शल्य भाव रखा, फलत वे सन्तप्त रहे, किन्तु मेघमुनि श्रेणिक एव चेलना आदि साधको ने मन मे कोई शल्य भाव नही रखा, अत वे सिद्धि-सुख को प्राप्त कर सके।

शल्य का प्रत्याख्यान करने से मन निर्मल हो जाता है। यदि स्वीकृत किये गये शल्यो एव अतिचारो का प्रत्याख्यान नही किया जाता तो उसे

---

१ जिससे बाधा एव पीडा हो उसे शल्य कहते हे। ये दो प्रकार के है— द्रव्यशल्य और भावशल्य। काँटा भाला आदि द्रव्य शल्य है और भाव शल्य ह—(१) माया शल्य (२) निदान शल्य (३) मिथ्या दर्शन शल्य

—जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, भाग १, पृ० ७३ (ठाणाग सूत्र १८२

२ (क) माया शल्य

> कोई वैरागी आलोवसी, आलोवे नही लपटी रे।
> आठ बोल "ठाणायग" कह्या, मायाविया होवै कपटी रे।

—जयवाणी पृ० १६८

(ख) मिथ्यादर्शन शल्य

> आचारवन्त ने आगले, शुद्ध आलोयण लीजे रे।
> भोला वालक नी परे, सरल होय आखीजे रे॥

—वही पृ० १६८

दण्डित होना पडता है । स्वकृत कर्मो के फल भोगने के स्थान को दण्डक कहते हे । कवि ने "चोवीस दण्डक नी सज्झाय" मे इन दण्डको[१] का वणन किया हे । शल्य-भावो से मुक्त होने के लिए दस प्रकार के प्रायश्चित[२] का विधान किया गया है ।[3]

पहले कभी यही मानव एकेन्द्रिय जीव के रूप मे रहा होगा। वाद मे उसमे जीभ के आने से दूसरी इन्द्रिय बढ गयी, नाक तीसरी इन्द्रिय मानी गयी, आँख चौथी और कान पाचवी । अर्थात् वह पूण मानव, पच इन्द्रिय

---

१ चौबीस दण्डक ये हे—

| | |
|---|---|
| (१) सात नरक | (२) असुर कुमार |
| (३) नागकुमार | (४) सुवर्णकुमार |
| (५) विद्युत्कुमार | (६) अग्निकुमार |
| (७) द्वीपकुमार | (८) उदधिकुमार |
| (९) दिशाकुमार | (१०) वायुकुमार |
| (११) स्तनित कुमार | (१२) पृथ्वीकाय |
| (१३) अप्काय | (१४) तेउकाय |
| (१५) वायुकाय | (१६) वनस्पतिकाय |
| (१७) बेईन्द्रिय | (१८) तेईन्द्रिय |
| (१९) चतुरिन्द्रिय | (२०) तियन्च पचेन्द्रिय |
| (२१) मनुष्य | (२२) वाण व्यन्तर |
| (२३) ज्योतिषी | (२४) वैमानिक |

—श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह भाग १, पृ० २०४

२ दस प्रायश्चित इस प्रकार हे

| | |
|---|---|
| (१) आलोचनार्ह | (२) प्रतिक्रमणार्ह |
| (३) तदुभयार्ह | (४) विवेकार्ह |
| (५) व्युत्सर्गार्ह | (६) तपार्ह |
| (७) छेदार्ह | (८) मूलार्ह |
| (९) अनवस्थाप्यार्ह | (१०) पाराचिकार्ह |

—श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, भाग १, पृ० ७४

३ प्रायश्चित दस प्रकार ना लेई ने शल्य काढीजे ।
लोक बतावे आगुली ऐहवो काम न कीजे रे ॥

—जयवाणी पृ० १६८

जीव बना। गर्भ मे आने के बाद इस जीव ने अनेक कष्ट सहे। अनेक दुख एव कष्टो के बाद उसे यह मानव जीवन मिला हे। पर अज्ञानवश इस दुर्लभ मानव जीवन को भी वह मोह-निद्रा वश यो ही खो देता है। यही नही अनेक पाप-कर्म करने के कारण वह नरक का भागी भी बनता है। अत आत्म-कल्याण के लिए कवि का उपदेश है—

दान, शियल तप, भावना जीवा,
एह थी राखो प्रेम।
कोई कल्याण छे तेहने जीवा,
रिख जयमल्ल कहे एम॥

पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग से ये तात्विक रचनाएं किंचित दुर्बोध बन गयी हे। इनमे कवित्व कम एव दार्शनिकता ही अधिक उभर कर सामने आयी हे।

## ३ चरित्रपरक रचनाए

सन्त कवि जयमल्लजी की भाव धारा प्रबन्ध रूप मे भी वही, यद्यपि यह प्रबन्ध रूप महाकाव्य की सी विशदता ग्रहण नही कर पाया। यह कथा-काव्य बनकर रह गया। इसमे इतिवृत्त का अश अधिक है। मार्मिक-स्थलो की तरफ भी कवि ने ध्यान कम दिया है। क्योकि कथा कहने की प्रवृत्ति इतनी तीव्र थी कि मार्मिक स्थलो पर विराम किये बिना ही वह आगे बढ जाता है, किन्तु कही-कही प्रसग की मार्मिकता दर्शनीय है।[1]

चरित काव्यो मे कथा-तत्व का अस्तितव प्राचीन काल से स्वीकार किया

---

१ तरसत अखियाँ हुई द्रुम-पखियाँ।
जाय मिली पिव सुं सखियाँ॥
यदुनाथजी रे हाथ री ल्यावे कोई पतियाँ॥
नेमनाथजी—दीनानाथ जी॥
जिण कू ओलमो एतो जाय कहणो,
थे तज राजुल किम भये जतियाँ।
जाकू दूगी जरावरो गजरो,
कानन कूँ चूनी मोतिया॥

—जयवाणी पृ० २२९

दण्डित होना पडता है। स्वकृत कर्मो के फल भोगने के स्थान को दण्डक कहते है। कवि ने "चोवीस दण्डक नी सज्झाय" मे इन दण्डको[१] का वणन किया है। शल्य-भावो से मुक्त होने के लिए दस प्रकार के प्रायश्चित[२] का विधान किया गया है।[3]

पहले कभी यही मानव एकेन्द्रिय जीव के रूप मे रहा होगा। वाद मे उसमे जीभ के आने से दूसरी इन्द्रिय वढ गयी, नाक तीसरी इन्द्रिय मानी गयी, आँख चौथी और कान पाँचवी। अर्थात् वह पूण मानव, पच इन्द्रिय

---

१ चौवीस दण्डक ये है—

| | |
|---|---|
| (१) सात नरक | (२) असुर कुमार |
| (३) नागकुमार | (४) सुवणकुमार |
| (५) विद्युत्कुमार | (६) अग्निकुमार |
| (७) द्वीपकुमार | (८) उदधिकुमार |
| (९) दिशाकुमार | (१०) वायुकुमार |
| (११) स्तनित कुमार | (१२) पृथ्वीकाय |
| (१३) अप्काय | (१४) तेउकाय |
| (१५) वायुकाय | (१६) वनस्पतिकाय |
| (१७) बेईन्द्रिय | (१८) तेईन्द्रिय |
| (१९) चतुरिन्द्रिय | (२०) तिर्यन्च पचेन्द्रिय |
| (२१) मनुष्य | (२२) वाण व्यन्तर |
| (२३) ज्योतिषी | (२४) वैमानिक |

—श्री जैन सिद्धात बोल सग्रह भाग १, पृ० ७४

२ दस प्रायश्चित इस प्रकार हैं

| | |
|---|---|
| (१) आलोचनार्ह | (२) प्रतिक्रमणार्ह |
| (३) तदुभयार्ह | (४) विवेकार्ह |
| (५) व्युत्सर्गार्ह | (६) तपार्ह |
| (७) छेदार्ह | (८) मूलार्ह |
| (९) अनवस्थाप्यार्ह | (१०) पाराचिकार्ह |

—श्री जैन सिद्धात बोल सग्रह, भाग १, पृ० ७४

३ प्रायश्चित दस प्रकार ना लेई ने शल्य काढीजे।
लोक वतावे आगुली ऐहवो काम न कीजे रे॥

—जयवाणी पृ० १६८

जीव बना। गर्भ मे आने के बाद इस जीव ने अनेक कष्ट सहे। अनेक दुख एव कष्टो के बाद उसे यह मानव जीवन मिला है। पर अज्ञानवश इस दुर्लभ मानव जीवन को भी वह मोह-निद्रा वश यो ही खो देता है। यही नही अनेक पाप-कर्म करने के कारण वह नरक का भागी भी बनता है। अत आत्म-कल्याण के लिए कवि का उपदेश है—

> दान, शियल तप, भावना जीवा,
> एह थी राखो प्रेम।
> कोई कल्याण छे तेहने जीवा,
> रिख जयमल्ल कहे एम ॥

पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग से ये तात्विक रचनाएं किंचित दुर्बोध बन गयी है। इनमे कवित्व कम एव दार्शनिकता ही अधिक उभर कर सामने आयी है।

## ३ चरित्रपरक रचनाए

सन्त कवि जयमल्लजी की भाव धारा प्रबन्ध रूप मे भी बही, यद्यपि यह प्रबन्ध रूप महाकाव्य की सी विशदता ग्रहण नही कर पाया। यह कथा-काव्य बनकर रह गया। इसमे इतिवृत्त का अश अधिक है। मार्मिक-स्थलो की तरफ भी कवि ने ध्यान कम दिया है। क्योकि कथा कहने की प्रवृत्ति इतनी तीव्र थी कि मार्मिक स्थलो पर विराम किये बिना ही वह आगे बढ जाता है, किन्तु कही-कही प्रसग की मार्मिकता दर्शनीय है।[1]

चरित काव्यो मे कथा-तत्व का अस्तित्व प्राचीन काल से स्वीकार किया

---

१ तरसत अखियाँ हुई द्रुम-पखिया।
जाय मिली पिव सु सखिया ॥
यदुनाथजी रे हाथ री ल्यावे कोई पतिया ॥
नेमनाथजी—दीनानाथ जी ॥
जिण कूं ओलमो एतो जाय कहणो,
थे तज राजुल किम भय जतियाँ।
जाकू दूगी जरावरो गजरो,
कानन कूं चूनी मोतिया ॥

—जयवाणी पृ० २२६

जाता रहा हे। इसी कारण चरित काव्यो को "कथा" कहा गया। प्राचीन साहित्य मे "कथा" शब्द का प्रयोग स्पष्ट रूप से दो अर्थो मे हुआ हे। एक तो साधारण कहानी के अथ मे ओर दूसरा अलकृत काव्य रूप के अर्थ मे। साधारण कहानी के अर्थ मे तो पचतत्र की कथाएँ भी कथा हे, महाभारत ओर पुराणो के आख्यान भी कथा हे, परन्तु विशिष्ट अथ मे यह शब्द अलकृत गद्य-काव्य के लिये प्रयुक्त हुआ हे।[1] चरित काव्य को कथा कहने की प्रवृत्ति काफी समय तक चलती रही। तुलसीदास का "रामचरित मानस" चरित काव्य होते हुए भी कथा-प्रधान है। उन्होने अपने ग्रन्थ मे इसे कई वार कथा-काव्य कहा हे। कवि की चरितपरक रचनाओ मे कथा की प्रधानता होने पर भी यह साधारण कथा के अर्थ मे प्रयुक्त नही हो सकती। यह अलकृत काव्य रूप ही हे।

**चरितकाव्य परम्परा**

ऐतिहासिक व्यक्तियो के जीवन चरित को आधार वनाकर काव्य लिखने की प्रवृत्ति इस देश मे सातवी शताब्दी के वाद तेजी से चली है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल मे यह प्रवृत्ति ओर अधिक वढ गई। जैन ग्रन्थो के मुख्य प्रतिपाद्य ६३ महापुरुपो के चरित्र हैं। इसमे २४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्ती, ६ बलदेव, ६ वासुदेव व ६ प्रतिवासुदेव है। इन "चरित्रो पर" लिखे गये ग्रन्थो को दिगम्बर परम्परा मे "पुराण" एव श्वेताम्बर परम्परा मे 'चरित' कहा गया हे। पुराणो मे सबसे प्राचीन पुराण 'त्रिपष्ठिलक्षण महापुराण' है जिसके आदि पुराण ओर उत्तर पुराण, ऐसे दो भाग हे। पुराणो की कथा प्राय राजा श्रेणिक के प्रश्न करने पर गोतम गणधर द्वारा कहलवाई है। श्वेताम्बर चरितो मे सबसे प्रसिद्ध हे—हेमचन्द्र का "त्रिपष्टिशलाका पुरुष चरित" जिसे स्वय आचार्य ने महा काव्य कहा है। इस अश की बहुत-सी कहानियाँ यूरोपियनो के मत से विश्व-साहित्य मे स्थान पाने योग्य ह। वीरनन्दी का चन्द्रप्रभ चरित, वादिराज का पाश्वनाथचरित, हरिचन्द का धर्मशर्माभ्युदय, धनजय का द्विसधान, वाग्भट का नेमिनिवाण, अभयदेव का जयन्त विजय, मुनिचन्द का शातिनाथ चरित आदि उच्चकोटि के महाकाव्य है।[2]

कुछ ऐसे भी चरित मिलते है जो इन ६३ पुराण-पुरुपो के अतिरिक्त ह यथा—प्रद्युम्न, नागकुमार, वराग-यशोधरा, जीवधर, जम्बूस्वामी, जिनदत्त

---

१ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल—५७

२ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका—२३०

श्रीपाल आदि । ऐसे श्रेष्ठ "महात्माओ एव श्रावको के चरित" काफी सख्या मे उपलब्ध होते है ।

इस प्रकार चरित काव्यो की कवि जयमल्लजी के सम्मुख एक लम्बी परम्परा थी । यदि वे चाहते तो एक-एक चरित्र को लेकर एक पूरा महाकाव्य भी लिख सकते थे, किन्तु यह उनकी प्रवृत्ति के अनुकूल नही था । जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, इन सन्त कवियो का प्रमुख ध्येय कविता करना नही था, कविता इनके लिये अपने सिद्धान्तो एव दर्शन को स्पष्ट करने के लिए साधन मात्र थी । ये सन्त अपने चतुर्मास के प्रवास के समय प्रतिदिन प्रात काल दो या तीन घण्टे जन-समुदाय के सम्मुख प्रवचन देते थे, (यह परम्परा आज भी निरन्तर चल रही है) । अत इस सीमित समय मे किसी भी महापुरुष के चरित को वे गा-गाकर सुनाया करते थे, प्रयत्नपूर्वक वे उस काव्य का शृगार नही करते थे । स्वभावतया ही उसमे काव्यत्व आ जाता था । हमारे आलोच्य कवि ने महापुरुषो के चरित को लेकर जो रचनाएँ लिखी है वे प्रबन्ध काव्य की कोटि मे आती है, किन्तु इन्हे कथा-काव्य कहना ही अधिक उचित होगा । ये सभी कथाएँ आगम सगत है । कवि ने प्रत्येक कथा के प्रारम्भ मे यह बता दिया है कि यह कथा किस सूत्र से ली गई है ।[1]

**कथा-सगठन**

इन सब कथाओ का उद्देश्य प्राय एक ही है वह है निर्वाण प्राप्ति । सासारिक भोग-विलास से मुक्त होकर लोकोत्तर जीवन को सफल बनाने के लिए चरित नायक प्रव्रज्या ग्रहण करते है । इन कथाओ मे काव्यशास्त्रीय ढग की जो कार्यावस्थाएँ है, उनका क्रमवद्ध विकास एव स्वरूप देखा जा सकता है । 'आरम्भ' मे राजघराने या कुलीन परिवार से सम्बन्धित पात्र सम्मुख आते है, कही-कही पर कुछ पात्र निम्न कुल के भी है, जैसे—अर्जुनमाली एव सद्दाल कुम्हार पुत्र । उद्देश्य की प्राप्ति (निर्वाण प्राप्ति) के लिए 'प्रयत्न' शुरू होने के रूप मे किसी तीर्थकर या मुनिराज का उस नगरी में पदार्पण होता है । नायक राजसी ठाठवाट से उनके दर्शनार्थ जाता है । वे तीर्थकरादि धर्मोपदेश देते है

---

१ एक उदाहरण देखिए—

रायपसेणी सूत्र मे रायप्रदेशी ना भाव ।
सूर्याभ देव मरने हुओ, धर्म तणे प्रभाव ।।

—जयवाणी पृ० २३६

एव कही-कही पर नायक के पूवभव को भी वता देते है। पूर्वजन्म की कथा सुनकर नायक सासारिक भोग विलासो एव भयकर दु खदाह से मुक्त होने के लिए सयम-धारण करने का सकल्प करता है। इस सकल्प को पूर्ण करने के लिए नायक को सघप करना पडता है। यह सघर्ष प्राय पारिवारिक होता है। कभी माता की ममता[1] उसे रोकती है तो कभी प्रियतमा की अश्रुपूर्ण आँखे उसे डिगाती है[2]।

इस प्रकार ये सभी नायक मोह-पाश को तोड कर कर्तव्य-पथ की ओर अग्रसर हो जाते है। यही 'प्राप्त्याशा' की स्थिति है। कभी-कभी सयम-धारण करने की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी अनुकूल वन जाती हैं। कृष्ण, नेमिनाथ को विवाह-सूत्र मे बाँधने के लिए अथक प्रयत्न करते है। राजमती के साथ नेमिनाथ का वाग्दान भी हो जाता है। यहाँ तक कि नेमिनाथ दूल्हा वनकर, बारात लेकर राजमती के महल तक भी चल देते है, किन्तु अचानक परिस्थिति बदल जाती हैं और वे भोज के लिए वन्दी पशु-पक्षियो का कातर करुण क्रन्दन सुनकर तोरण से उल्टे पाँव लौटकर दीक्षा धारण कर लेते है।[3]

सयम लेने के बाद केवल-ज्ञान प्राप्त करने तक की स्थिति 'प्राप्त्याशा' से लेकर नियताप्ति तक की स्थिति है। नियताप्ति तक पहुचने के लिए साधक को देवता अनेक परिपह[4] देते है। यदि वह इन परिस्थितियो से वीर योद्धा की

---

१ (क) सुबाहुकुमार की माता उसे रोकती है।

—जयवाणी—२११-१३

(ख) देवकी गजसुकुमाल को रोकती है।

—जयवाणी—३४० ४१

२ मेघकुमार को उसकी आठ रानियाँ रोकती है।

—जयवाणी—३७४ ७५

३ जयवाणी पृ०—२१७-२१८

४ आपत्ति आने पर भी सयम मे स्थिर रहने के लिए तथा कर्मों की निर्जरा के लिए जो शारीरिक तथा मानसिक कष्ट सहने पडते है उन्हे परिपह कहते है।

—श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह भाग १ पृ०—१६० (समवायाग २२ वा)

भाँति जूझ सकता है तो 'फलागम' निश्चित हे। स्कदक ऋषि की उनके बहनोई द्वारा चमडी उतरवाई गई पर वे तनिक भी विचलित नही हुए।[1]

उदाई राजा ने अपने पुत्र को राज्य न देकर भगिनेय केशी को राज्य दिया और दीक्षा ली पर केशी ने मुनि उदाई को औपधि मे विप मिलाकर मरवा डाला। इस पर भी उदाई मुनि समभावी बने रहे।[2] मेघ कुमार ने अन्य मुनियो की ठोकरे खाई।[3] उन्हे सताप भी हुआ, किन्तु हाथी के पूर्व-भव मे शशक बचाने की भावना ने उन्हे सयम मे दृढ बना दिया। कार्तिक सेठ ने भी अपनी पीठ पर गम-गर्म खीर का थाल झेला।[4] गजसुकुमाल ने सोमिल

---

१. तीखी पाछणा नी धार,
मस्तक ऊपर फार सुकोमल साथ।
त्वचा उतारी देहनी ए ॥२३॥
पगा सुधी खाल,
तोही रह्या सयम मा लाल, सुकोमल साध,
नाका सल घाल्यो नही ए ॥२४॥

—जयवाणी—३०८

२ अटण करता आविया वैद्य अकारज कीधो रे।
विप मिश्रित वस्तु तिका, मुनिवर पात्रे दीधौ रे ॥३॥
निरदोसण जाण थानक आय ने, रोग जावा औपध खायो रे
जहर प्रगट्यो वेदन हुई ऊजल, सही न जायो रे ॥४॥

—जयवाणी—३६०

३ कोई परठन जावे जी मातरो रात तणे समय मायजी,
किण री ठोकर लागवे कोई ऊपर पडी जायजी ॥
कोई लेवा जावेजी वाचणी, पग तले आगुली आयजी।
पगनी रज पडै माथ रे, अरति आई मन माय जी ॥मेघ॥

—जयवाणी—३७९

४ ऊनी खीर परूसने, मोरा ऊपर मूकी थाल।
सेठ मौर फेर्या नही, जिन थाल सूं उपड्या छाल रे ॥२॥
कठिन परीपह सेठ, सह्यो, जाणे अजयणा थाय ॥
रखे थाल हेठो पडे रे, तो नाना जीव मार्या जाय रे ॥३॥

—जयवाणी—३९०-३९१

द्वारा खैर की लकडी के अगारे उनके मस्तक पर रखे जाने पर भी अपना ध्यान न छोडा[1]।

ये वाधाएँ ही साधक को कसोटी पर कसती ह। जो इन कसाटियो पर खरा उतरता है, वह "नियताप्ति" की स्थिति मे पहुँच जाता है। इन कथाओ मे यह स्थिति या तो केवल-ज्ञान की प्राप्ति पर निश्चित होती हे या किसी विमान (स्वर्ग-लोक) विशेप मे पहुँचने पर। इसके वाद "फलागम" के रूप मे मुक्ति की प्राप्ति होती ह। जहा जन्म-मरण का चक्र टूट जाता है। यही पूण आध्यात्मिकता की स्थिति है जहाँ लौकिकता का अ श मात्र भी नही रहता।

**कथानक रूढियाँ —**

परम्परा का अभिमान जातीय गौरव की वस्तु है। जिम प्रकार कुल, जाति और सस्कृति की प्रेरणादायिनी शक्तियो के निर्माण के पीछे एक सशक्त एव गोरवशाली इतिहास रहता हे वैसे ही साहित्य की सुनिश्चित परम्पराओ के पीछे भी मवत्र लम्वे अतीत का उज्ज्वल इतिहास एव अनेक मनीपियो का अपार वुद्धि-वैभव सतत क्रियाशील रहता है। पूर्व रचित साहित्य मे प्राप्त सौन्दर्य की अनेक विधाएँ, चमत्कार की अनेक प्रणालियाँ आदि सस्कृति की जीवन मान्यताएँ वन जाती है। ये परम्पराएँ कालान्तर मे वहुजन प्रयुक्त होकर रूढियो का रूप धारण कर लेती है, अनेक व्यक्तियो द्वारा अनेक स्थलो पर दुहराई जाने पर वही वात रूढि वन जाती है। परम्परा को समझ-वूझकर विकल्प वुद्धि द्वारा ग्रहण किया जाता है, किन्तु रूढि का प्रयोग अधाधुन्ध होता है। कथानक रूढियाँ भी इसी प्रकार की रूढियाँ हे, जिन्हे अग्रेजी मे Motif कहते हे। कथनाक-रूढि के सम्वन्ध मे शिफले का कथन है, मोटिफ एक शव्द अथवा विचारक्रम है जिसकी समान स्थितियो मे पुनरावृति होती है अथवा जो युग की किसी एक अथवा विभिन्न कृतियो मे समान मानसिक दशा उत्पन्न करने के लिए आता ह।"

कथानक-रुढि शव्द का प्रयोग हिन्दी मे सवसे पहले डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने किया है। वे लिखते है—"ऐतिहासिक चरित का लेखन सम्भावनाओ

---

[1] देखी सोमल कोप्यो मस्तक वाधी पाल।
खेराना खीरा, शिरठविया अमराल।६४।
मुनि नजर न खण्डी मेटी मननी झाल।
परीपह सही ने मुक्ति गया तत्काल।६५।

—अनन्त चौवीसी

पर अधिक बल देता है। सम्भावनाओ पर बल देने का परिणाम यह हुआ है कि हमारे देश के साहित्य मे कथानक को गति और घुमाव देने के लिए कुछ अभिप्राय दीर्घकाल से व्यवहृत होते आ रहे हे जो बहुत थोडी दूर तक यथार्थ होते हे और जो आगे चलकर कथानक रूढियो मे बदल गये ह।"[1] वासुदेवशरण अग्रवाल के कथानुसार "ईट गारे की सहायता से जैसे भवन बनते हे वैसे ही भिन्न-भिन्न अभिप्रायो की सहायता से कहानियो का रूप सम्पादित होता ह।" हमारे आलोच्य कवि ने भी चरितकाव्यो मे गति एव तीव्रता लाने के लिए कथनाक रूढियो का सहारा लिया है। कही-कही कथानक रूढियाँ इतनी अधिक छा गई हे कि कथा का मूल अश दब-सा गया हे। सन्त कवि जयमल्लजी द्वारा रचित कथा-काव्यो मे मुख्यत निम्नलिखित कथानक रूढियाँ प्रयुक्त हुई हे—

(१) नायक कोई राजा, राजकुमार या गाथापति होता है।

(२) नायक को सासारिक भोग ऐश्वर्य के सभी साधन यथेष्ट मात्रा मे उपलब्ध है। कई कथाओ मे नायक के एक से अधिक रानियाँ है।

(३) तीर्थकर भगवान या कोई विशिष्ट मुनिराज ग्रामानुग्राम विहार करते हुए उसकी नगरी मे पदार्पण करते हे।

(४) नगर के प्रमुख उद्यान मे ये मुनिवर ठहरते है।

(५) नायक राजसी ठाठबाट के साथ सपरिवार उन्हे वन्दन करने के लिए जाता है।

(६) तीर्थकर भगवान नायक को धर्म देशना के साथ-साथ पूर्वभव का वृत्तान्त भी सुनाते है।

(७) अपने पूर्वभव का वृत्तान्त सुनकर नायक ससार से विरक्त होकर दीक्षा लेने का सकल्प करता है और अपने पुत्र को उत्तराधिकारी बना देता है।

(८) दीक्षा के भयकर कष्टो का वर्णन सुनकर भी वह विचलित नही होता ह।

(९) नायक उन्हे प्रतिबोध देकर दीक्षा ले लेता है। कभी-कभी माता-पिता एव अनेक मन्त्रीगण भी साथ ही दीक्षा ग्रहण कर लेते हे।

(१०) साधना-काल मे नायक को अनेक उपसर्ग एव परिणाम सहने पडते हैं।

---

1 डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ०—८०

(११) इन कठिनायो मे प्राय देवता आकर सहायता करते है, पर तपस्वी साधक अपने बल पर ही उसका मुकाबला करते है ।

(१२) कभी-कभी देवता भी वैक्रिय रूप धारण कर नाना प्रकार के दु ख देकर नायक के सयम एव चरित्र की परीक्षा लेते है ।

(१३) साधना मे खरा उतरने पर नायक को केवल-ज्ञान प्राप्त होता हे एव अन्तत वह मोक्ष का अधिकारी बनता हे ।

उपर्युक्त सभी कथानक रूढियाँ कथा को बल प्रदान करती है । इनसे कथा मे वक्रता एव घुमाव आ जाता है जिससे पाठक की उत्सुकता बराबर बनी रहती हे ।

**पात्र एव चरित्र-चित्रण**

सौन्दर्य का एक मनोरम रूप पात्रो की नवीन सृष्टि मे भी दिखाई देता है । जिस प्रकार किन्ही परिस्थितियो, भावनाओ, विचारो एव दृश्यो की अभि-व्यजना मे सौन्दर्य की प्रतीति होती है उसी प्रकार पात्रो की सृष्टि भी हमे मुग्ध कर देती हे । जब हमारी हृदय-चेतना के मच पर अनेक पात्र भिन्न-भिन्न अभिनय करते है तब ऐसा अनुभव होता हे मानो हम कोई भव्य दृश्य का अवलोकन कर रहे हो । आलोच्य कवि ने इन कथा काव्यो मे पात्रो की बडी मनोरम सृष्टि की है । यहाँ आये पात्र कुलीनवर्ग से सम्बन्धित हे । पुरुष पात्र राजा, महाराजा या सेठ आदि है । उदाहरण के लिए 'भृगुपुरोहित 'सेठ हे, नेमिनाथ' राजकुमार हे, 'सुबाहुकुमार' राजकुल से सम्बन्धित है, 'राजा प्रदेशी' राजा हैं, 'मेघकुमार' राजकुमार है । 'कार्तिक' सेठ हे । कुछ कथाओ के नायक आदर्श श्रावक हे । यद्यपि वे उच्चकुलीन नही हे तथापि उनका परिवेश धार्मिक सौरभ से मडित हे, जैसे 'सद्दालपुत्र' एक कुम्हार हे । 'अर्जुनमाली' माली हे ।

ये सभी पात्र जीवन के प्रात काल मे प्राय भोगी एव गृहस्थ होते है किन्तु प्रारम्भिक जीवन मे ही कोई घटना ऐसी घटित होती हे कि ये ससार से बिल्कुल विमुक्त होकर जीवन के सध्याकाल मे सयम धारण कर निर्वाणपथ के पथिक बन जाते हे । स्त्रीपात्र भी सामान्यत ऊँचे कुल से सम्बन्धित हे । इनमे माता एव स्त्री का रूप सर्वाधिक निखर कर सामने आया है । कभी ये नायक को सयम लेने से रोकती हे और विलाप भी करती हे और कभी स्वय भी दीक्षा ग्रहण कर लेती है । 'महारानी देवकी' शीर्षक रचना मे देवकी का मातृत्व पूर्णरूप से उभरकर सामने आया है । देवकी ने सात-सात पुत्रो को

जन्म देकर भी एक को भी अपनी गोदी मे नही खिलाया, न उसे स्नान करवाया तात्पर्य यह कि वह अपने मातृत्व को तृप्त नही कर सकी। वह अनुताप करती है—

**रोवतो मै राख्यो नही, कन्हैया**
**पालणिये पौढाय रे, गिर०।**
**हालरियो देवा तणो, कन्हैया,**
**म्हारे हूँस रही मन माय रे, गिर० ॥ हू ॥**[1]

यह अनुताप उसे वात्सल्य रस की सजीव प्रतिमा वना देता ह और अन्तत आठवे पुत्र गजसुकुमाल की माता बनकर वह अपने मातृत्व को सार्थकला प्रदान करती हे, किन्तु, हाय रे भाग्य! वह भी युवावस्था आते-आते दीक्षा ग्रहण कर लेता है। "भगवान नेमिनाथ" शीर्षक रचना की नायिका राजमती ने यौवन की देहरी मे पाव रखा था एव प्रेम को आमन्त्रित किया ही था कि वह प्रेम आते-आते ही वापस लौट गया। उसके वाद राजमती विरह की अनन्त साधना करती है और अन्त मे सयम धारण कर लेती है। उसकी मखी सहेलियाँ उसे सयम मार्ग से विमुख करने के लिए नेमिनाथ के काले वर्ण को लेकर कई अवगुण बताती हे और किसी दूसरे युवक से विवाह के लिए समझाती हे, किन्तु राजमती अपने आदर्श प्रेम की रक्षा करती हुई कह उठती है—

**राजुल भाखे हे सखियाँ! थे तो मूढ गिवार।**
**काला मे किसो खोड पीत किजे मन भावती ॥**
**कालो हाथी हे सखियाँ! सोहै राज दुवार।**
**काली घटा जल-धार ॥**
**काली हुवे किस्तूरडी, काली कोकी है सखियाँ!**
**सोहे आँख मझार।**
**जिम काला नेमकवार।**
**अवर वरेवा आखडी।**[2]

नेमिनाथ के दर्शन के लिए राजमती रातदिन तरसती रहती है, सखियो को प्रिय का सन्देश लाने या उपालम्भ भेजने के लिए झुमलाती रहती हे, देखिये—

---

१ जदवाणी —३२२

२ ज्यवाणी —२२२

तरसत अँखिया हुई द्रुम-पखियाँ ।
जाय मिलो पिवसूँ सखियाँ ।
यदुनाथ जी रे हाथ री ल्यावे कोई पतियाँ ।
नेमनाथ जी—दीनानाथ जी ॥
जिण कूँ ओलभो एलो जाय कहणो,
थे तज राजुल किम भये जतिया ॥
जाकू दूंगी जरावरो गजरो,
कानन कू चूनी मोतिया ॥
अँगुरी कू मूदडी,औढण कू फभडी
पेरण कू रेशमी धोतिया,
महल अटारी-भए कटारी,
चद-किरण तनू दाभतिया ॥[1]

राजुल की माता उसे कई प्रकार से आश्वस्त करती हे, वह यही कहती है—"किण के शरणो जाऊँ, नेम बिना किनके शरणें जाऊँ।" कवि की ये पक्तियाँ चिर-वियोगिनी मीरा के काव्य की स्मृति करा देती है। उपर्युक्त पक्तियाँ विरहिणी राजुल का चित्र आँखो के सामने स्पष्ट कर देती है।

इन मानवीय पात्रो के अतिरिक्त कुछ दैविक पात्र भी इन कथा-काव्यो मे आये हे। देव पात्रो मे देव एव यक्ष आदि आते हे। ये अलौकिक पात्र नायक को उद्देश्य प्राप्त कराने मे कही तो सहायक बनते है और कही वे कष्ट देकर उन्हे आतकित भी करते हे। 'अर्जुनमाली' नामक कथा-काव्य मे अर्जुन की स्त्री पर बलात्कार होने पर उसका विश्वास अपने भगवान की मूर्ति से उठने लगता है, किन्तु देव तुरन्त ही उपस्थित होकर उसकी सहायता करते हे—

देव क्रोध तणे वश थायो,
पैठो अर्जुन रा डीलमायो।
जख परतख कीधी सहाय,
इण रे पेस गयो दिल माय।
सबलो कीधौ जोरो,
तडक नाख्या बधण तोडो।
सहस पल नो सहमाय,
छऊँ पुरुसाने नाख्या हाय।[2]

१ जयवाणी,—२२९-२३०
२ जयवाणी,—४८९

"महारानी देवकी" कथा-काव्य मे देवकी के सात पुत्र होते ह पर एक भी उसके पास नही रहता । देव-कृपा से वे पुत्र सुलसा नामक स्त्री को मिल जाते थे एव देवकी मृत पुत्रो की ही माता वनी रह पाती थी—

देव कहे मुझ थकी जी, तुझ नन्दन जीवाय ।
पिण हूँ आपिस जीवता जी, पर ना बालक लाय ॥
सुलसा ने तू एकण समे जी, गर्भ धरे समकाल ।
साथे जणे देव जोग थी अनुक्रमे षट ही बाल ॥
देवकी सासौ मति कर कोय ॥
मुर्दा बालक सुलसा जणे जी, ते मेले तुम पास ।
ताहरा मेले जीवता जी, सुलसा री पूरे आस ॥ देव[1]॥

ये सभी पात्र कथा-काव्यो मे पूर्ण रूप से चित्रित नही हो पाये हैं । इसका कारण कवि का सीमित उद्देश्य रहा है उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए ही कवि पात्रो को प्रेरित करता हे और केवल इसी प्रसग मे पात्रो का चरित्र स्पष्ट हुआ हे ।

## वर्णन

इन कथा काव्यो मे इतिवृत्त की प्रधानता है । इसी कारण इनमे वर्णनो का बाहुल्य है । ये वणन दो रूपो मे सामने आये है—वस्तुरूप मे और भावरूप मे ।

### (क) वस्तुरूप मे वर्णन —

वस्तुरूप मे जो वर्णन आये है, उनसे कई सास्कृतिक विशेषताओ का पता चलता हे । इन वणनो मे नगर वर्णन, वैभव वर्णन, जन्म वर्णन, रूप वर्णन, विवाह वणन, मुनि दर्शन एव दीक्षा वर्णन प्रमुख है ।

### (१) नगर वर्णन

'मेघकुमार" कथा-काव्य मे राजगृही नगरी का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

राजगृही नगरी अति सुन्दर,
माथा रा तिलक समान री माई ।
एक कोड ने छासठ लाख,

---

१ जयवाणी,—३२८ ३२९

गाँव तणो अनुमान री माई
पुण्य तणा फल मीठा जाणो ॥[1]

## (२) वैभव-वर्णन

द्वारिका-नगरी के वर्णन मे कवि ने वैभव एव ऐश्वर्य का उल्लेख इस प्रकार किया है—

भगवन्त नगरी द्वारिका जी,
बारे जोजन प्रमाण।
कृष्ण नरेसर राजवी जी,
ज्यारी तीन खण्ड मे आण।
मुनीसर एक करूँ अरदास ॥
सोवन कोट रतन कागुरा जी,
सोभे रूडा आवास।
झिगमिग करने दीपता जी,
देवलोक जिम सुख-वास ॥ मुनी० ॥[2]

## (३) जन्म-वर्णन

जन्म वर्णन मे अनेक काव्य-रूढियो का प्रयोग किया गया है जैसे — चौसठ, इन्द्र-इन्द्राणियाँ जन्मोत्सव मनाने के लिए उपस्थित हुए, छप्पन कुमारिया उल्लास मनाने लगी, आदि 'महारानी देवकी' कथा मे गजसुकुमार के जन्म वर्णन का एक उदाहरण देखिए —

जीहो-तोला मापा वधारिया लाला,
दश दिन महोच्छव थाय।
जीहो-वान्ध्या तोरण, बाटे सीरणी लाला,
चन्दन केशर हाथा दिराय ॥ राणीजी ॥
जीहो-यादव नारी सावटी लाला,
आवे गावे गीत।
जीहो-चौक पुरावे माडणा लाला,
साचविये शुभ रीत ॥ राणीजी ॥[3]

---

१ जयवाणी, पृ० ३६३
२ जयवाणी,—३१८
३ जयवाणी,—३३६

## (४) रूप-वर्णन

इन सभी कथा काव्यो मे रूप-वर्णन मिलते है। ये रूप-वर्णन तीन प्रसगो पर किये गये हे—जन्म के अवसर पर, विवाह के अवसर पर एव मुनि-दर्शन के अवसर पर। इन वर्णनो मे आये हुए उपमान प्राय परम्परागत है। द्रोपदी के जन्म होने पर उसका जो रूप-वर्णन किया गया है वह अत्यधिक लुभावना एव अद्वितीय है—

कुवारे रूप माहे रलियामणी,
मुख बोले अमृत-वाण रे लाला।
मीठी शाकर कन्दसी,
बलें भासे हित मित जाण रे लाला।
नयण सलूणी रे कन्यका॥
अधरशशी सम सोभतो,
पुनि पूरण भरियो भाल रे लाला।
नयन-कमल जिम विकसता,
बेहू बाँहे कमल नो नाल रे लाला॥ नयन०॥
नाशिका दीपे शिखा समी,
गकवेसर लहे नाक रे लाला।
दन्त जिसा दाडिम - कुली,
मृग-नयनी सूरत पाक रे लाला॥ नयन०॥[1]

भगवान नेमिनाथ का रूप-वर्णन भी प्रभावशाली बन पडा है—

सावल वर्ण शरीर विराजे,
एक सहस्र आठ लक्षण छाजे।
दिन दिन अधिकी ज्योति विराजे,
दर्शन दीठा दारिद्र्य भाजे।[2]

विवाह के लिए नेमिनाथ रथ पर यात्रा सजाकर चले है। रथ मे वैठे हुए वे ऐसे लगते है मानो ग्रह-नक्षत्रो के बीच चन्द्र हो—

नेम कवर रथ वैठा छाजे,
ग्रह नक्षत्र मे जिम चन्द विराजे।[3]

---

१ जयवाणी —२६७-२६८
२ जयवाणी,—२१७
३ जयवाणी,—२२२

देवकी भगवान नेमिनाथ को वन्दनार्थ जाती है, उस समय उसने शृङ्गार किया है। स्नान कर नवीन वेश धारण किये हे, आभूषण पहने हे, हाथो मे ककण, कठ मे नवसर हार, पैरो मे नूपुर। वह ऐसी लगती है मानो साक्षात् देवागना हो —

> न्हाई ने मजन करी, पहिर्या नव-नवावेश।
> माणक मोती माला मूंदडी गहणा हार विशेष॥
> हाथो मे कगन सोभता कण्ठे नवसरहार रे लाला।
> पगे नेवर दीपता, जाणे देवागना उणिहार रे॥[1]

## (५) विवाह-वर्णन

विवाह-वर्णन मे कवि ने दहेज वर्णन को भी समाविष्ट कर लिया है। नेमिनाथ विवाह के लिए सजधज कर जाते है।[2] सुबाहु कुमार के विवाह-प्रसग मे दहेज का यह उल्लेख देखिए —

> **पाच सै तो कौडे रूपैया,**
> **पाच सैं सौवन नी कोड हो गौयम।**
> **पाच सैं तो थाल सोना ना,**
> **पाच सौ रूपा ना जोड हो गौयम॥[3]**

## (६) मुनि-दर्शन एवं दीक्षा-वर्णन

मुनि-दर्शन के लिए राजा महाराजा अकेले नही जाते थे। वे शोभा-यात्रा के साथ बहुत सज-धज कर जाते थे। अनेक मन्त्रिगण, रानिया आदि भी बहुत श्रद्धा से वन्दना करने जाया करते थे। महारानी देवकी नेमिनाथ के दर्शनार्थ जा रही है। उसने शानदार रथ सजवाया हे। उस रथ की भी अनेक विशेपताएँ है। वह बहुत ही हल्का है और चार पहियो वाला है। उसमे चारो

---

१ जयवाणी —३२७

२ ऊपर चढियो नेम लाल, बाधी शिरे पाग लाल,
केशरी गुलाल लाल, लाल हाथ कावडी॥
मुग्या ही की माला लाल मोत्या विच पेरी लाल,
तिलक निडाल लाल लाल ओढी फावडी॥
—जयवाणी—२२२

३ जयवाणी—१०३

ओर मोतियो की जाली लगी हुई हे ।[1] जुते हुए बैलो का क्या कहना ? दोनो बैल समान जोडी के हे, वे भली प्रकार सजाये गये हे —

बलदा रे झलज सोभती,
नाके नथ रसाल रे लाला ॥
राखडी सींगा मे सोभती,
गल बाधी गुग्घर माल रे ॥ श्री० ॥
सोना री गले मे साकली,
रूपा री टोकरियो जाण रे लाला ।
सोना री खोली सीग मे,
दोय इसडा बलदज आण रे ॥ श्री० ॥
कमल रो सोहे सेहरो,
लटके सींगा रे माय रे लाला ।
नथ सोने रेशम री भली,
तिणसू नाक दोरो नहीं थाय रे ॥ श्री० ॥[2]

दीक्षा-प्रसग का भी कवि ने बहुत विस्तार से वर्णन किया हे । दीक्षार्थी राजा के साथ अनेक मत्रिगण एव अन्य राजा भी दीक्षा ग्रहण करते थे ।

सहस पुरुष साथ करी रे, सजम लियो जिनराय रे ॥
हूँ तो नेम नमू रे बावीसमा ।[1]

दीक्षा-प्रसग मे वर्षीतप का, दान देने का, लोच करने का, माता-पिता की मार्मिक अनुभूति आदि का रोचक वर्णन किया गया है ।

(ख) भावरूप मे वर्णन —

इन वर्णनो मे इतिवृत्त की प्रधानता नही है । इनमे मार्मिक एव भावात्मक स्थलो का समावेश होता हे । इनमे मन के विभिन्न भावो की अनेक प्रकार से

---

१ रथ हलको घणो बाजणो वले च्यार पेडा रो जाण ।
अशुद्ध शब्द करे नही, लागे लोका ने सुहाण ॥ ३ ॥
हलवा वाष्ट ना झूसरो, वले चोडा पेडा जोत ।
मोत्या री जाली लग रही, छती शोभा को उद्योत ॥ ४ ॥
—जयवाणी, पृ० ३२६

२ जयवाणी, पृ० ३२६-३२७

३ जयवाणी, पृ० ३२८

प्रकट किया गया हे । वात्सल्य, शृ गार, शान्त, वीर, वीभत्स एव हास्य रस के छीटे अनेक स्थलो पर देखे जा सकते है । कवित्त्व का स्फुरण इन्ही स्थलो पर हुआ है । जहाँ कही परिपाक मे बाधा पहुँची है, उसका प्रमुख कारण कवि के उद्देश्य-भोगपरक जीवन की निस्सारता एव योगपरक सयमनिष्ठ जीवन की श्रेष्ठता का बीच-बीच मे आ जाना ही रहा है । कवि का दृष्टिकोण आध्यात्मिक होने के कारण रस-निरूपण की दृष्टि से इन रचनाओ मे शान्तरस की ही प्रधानता है । प्राय सभी रचनाओ की परिसमाप्ति शान्त रस मे हुई है, शृ गार, वात्सल्य, वीर आदि शान्त रस के सहयोगी बनकर ही आये है ।

**शान्त रस —**

शान्त रस के सम्बन्ध मे भरतमुनि ने कहा है—ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय के निरोध करने वाले और आत्म-निष्ठ (साधक) के द्वारा प्राप्य, समस्त प्राणियो के लिए सुखकर व हितकर शान्त रस है जहाँ न दु ख रहता हे न सुख, न द्वेप और न ईर्ष्या रहती है । समस्त प्राणियो मे समभाववाला वह शान्त रस प्रसिद्ध माना गया है ।[१] जेन साहित्यकारो ने शान्त रस को ही रसराज माना है । इस रस का स्थायीभाव है वैराग्य या शम । तत्व-चिन्तन तप, ध्यान, स्वाध्याय, समाधि आदि विभाव है, काम, क्रोध, मान माया लोभ मोह का अभाव अनुभाव है । धृति, मति आदि सचारी भाव है । सच तो यह है कि जहाँ देह धर्मिता छूट जाती है, समरसता की स्थिति आ जाती है, वही शान्त रस का परिपाक होता हे । शान्त रस का रस राजत्व इसलिए सिद्ध है कि सभी रसो का उद्गम भी इसी रस से होता है और सबका समावेश या विलय भी इसी मे होता है । मानव जीवन की समस्त प्रवृत्तियो का उद्गम शान्ति से ही होता है ।[२]

जैन आचार्यों ने वैराग्य-भावना की उत्पत्ति के दो साधन बताये है—तत्त्वज्ञान व इष्ट वियोग व अनिष्ट सयोग । राग की अतिशय प्रतिक्रिया ही वैराग्य है । जैन कथा-काव्यो मे जितने भी नायक है वे सामान्यत भोग-भोग-

---

१　बुद्धीन्द्रिय कर्मेन्द्रिय सरोधाध्यात्मक सस्थितोपेत ॥
　सर्वप्राणि सुखहित शान्तरसो नाम विज्ञेय ॥
　यत्र न सुख न दुख न द्वेपो नापि मत्सर ।
　सम सर्वेषु भूतेषु स शान्त प्राथितो रस ॥ —भरत मुनि ।

२　डा० नरेन्द्र भानावत साहित्य के त्रिकोण—२८२-२८३

कर ही योग मार्ग की ओर अग्रसर होते है। राग की अतिशयता के ही कारण निर्वेद भावो की उत्पत्ति मानने से जन साहित्य की शान्त रसात्मक कृतियो मे भी शृ गार रस का जमकर वर्णन मिलता है। सुबाहुकुमार, महारानी देवकी, उदायीराजा, मेघकुमार आदि अपने प्रारभिक जीवन मे सासारिक भोग-विलास मे लिप्त रहते थे, किन्तु इस भोग की प्रतिक्रिया स्वरूप वे जीवन के सध्याकाल मे वैराग्य मार्ग पर चल पडते है।

कवि ने इन कथा-काव्यो मे नायक के द्वारा इस ससार की असारता को बहुत ही निवृत्त रूप से अनेक स्थानो पर कहलवाया है। सुबाहुकुमार माता-पिता से प्रवज्या ग्रहण करने की आज्ञा माँगते है, किन्तु माता-पिता उसका वियोग क्षण-मात्र भी नही चाहते। सुबाहुकुमार तब माता-पिता को ससार की असारता के बारे मे बताते है —

अध्रुव अनित्य अशास्वता रे, उपद्रव लगा है अनेक।
बीजल झबका नी परे रे, जल-परपोटो लेख ॥
डाभ-अणी-जल बिंदवो ए, जैसो सझा नो राग।
सुपन दर्शन नी ओपमा ए, सडन पडन ए लाग ॥
पेली पछे देह छोडनी ए, कुण जाणे मा चाल।
मा बेटा खबरा नहीं ए, कुण कर जाये काल ॥

यहाँ निर्वेद भाव प्रधान है। इसका आशय सुबाहुकुमार स्वय है। आलम्बन ससार की असारता है। इस ससार के उपद्रव उद्दीपन है।

**वात्सल्य रस —**

सन्तान के प्रति माता-पिता आदि की अनुरक्ति अथवा उनका स्नेह वात्सल्य कहलाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानो ने इसे अलग से नही स्वीकार किया है। उनके अनुसार शृ गार का स्थायी भाव रति है। स्नेह, प्रेम, भक्ति-वात्सल्य आदि इस रति के ही अग है। पर डा० नगेन्द्र ने वात्सल्य रस की अलग से सत्ता स्वीकार की है। उनका कहना है कि वात्सल्य भाव मातृवृत्ति का मनोभव अनुभव है और मातृवृत्ति निश्चय ही जीवन की अत्यन्त मौलिक वृत्ति है, पुत्रैषणा जीवन की सर्वाधिक प्रबल एषणा है जिसका जीवन के दो परम पुरुषार्थों धर्म एव काम से घनिष्ठ सम्बन्ध है अत वात्सल्य के रसत्व का निषेध नही किया जा सकता और न उसका शृ गारादि मे अन्तर्भाव ही उचित है और न केवल भाव-कोटि तक ही उसका विकास मानना ठीक होगा। आचार्य विश्वनाथ वात्सल्य रस के बारे मे लिखते हैं—

अथ मुनीन्द्र सम्मतो वत्सल

स्फुट चमत्कारितया वत्सल च रस विदु ।
स्थायी वत्सलता स्नेह पुत्राद्यालम्वन मतम् ।।

अर्थात् इसका स्थायी भाव वत्सलता है। यह विशुद्ध नि स्वार्थ प्रेम 'वत्स' के प्रति हे। छोटे वालक आलम्बन, माता-पिता आदि गुरुजन आश्रय हे। सन्तान की भोली भाली चेष्टाएँ—तुतलाना, चचलता, हसना आदि उद्दीपन विभाव हे। आलिगन, मुग्ध होना, गोद मे उठाना आदि अनुभाव है। शृ गार रस के समान वात्सल्य रस के भी दो भेद सयोग वात्सल्य एव वियोग वात्सल्य है।

जयमल्लजी के इन कथा काव्यो मे वात्सल्य रस के अनेक स्थल है। राज-कुमार या राजा, तीर्थंकर या साधुओ की वाणी सुनकर प्रवज्या धारण करने को तत्पर होते है तब माता-पिता का वत्सल भाव उमड पडता है। महारानी देवकी तो वात्सल्य की साकार प्रतिमा ही है। सुबाहुकुमार की माता पुत्र के दीक्षा लेने के सकल्प को सुनकर तडप उठती है।

**लागे घणो तू सुहामणो रे, रतन करड समाण,**
**उबर फूल तणी परे रे, दुर्लभ देखवो जाण रे।**
**जाया ! बोलो बोल विचार ।।**
**थारो वच्छ ! वाछू नहीं रे, खिण मात्र नो विजोग।**
**तिण कारण माहरा डीकरा रे, विलस काम ने भोग रे ।।**[1]

यह प्रवास भी कुछ दिनो का नही। काफी लम्बे समय का हे या यूँ समझ लीजिए की हमेशा का ही है। देवकी का अपने पुत्र के लिए विलाप भी एक हृदयस्पर्शी घटना है। जिसने सात-सात पुत्रो को जन्म देकर भी मातृत्व का आनन्द नही उठाया। उसके हृदय मे यही दर्द हे कि उसने कन्हैया को हाथ पकडकर चलाया नही, रोते हुए को बहलाया नही, ओढाया नही। इस अनु-ताप मे घुल-घुल देवकी सचमुच वात्सल्य की मूर्ति बन गई है[2]।

---

१ जयवाणी,—२१०-२११

२ जाया मै तुम सारिखा कन्हैया, एकण नाले सात रे।
एकण ने हुलरायो नही कन्हैया, गोद न खिलायो खण मात रे।
वालपणा रा बोलडा कन्हैया, पूरी नही काई आस रे।
आशा अलूधी हूँ रही कन्हैया, भार मुई नव मास रे।

वात्सल्य रस के सयोग के चित्र भी कवि ने बडी तन्मयता से अकित किये है। महारानी देवकी के छ पुत्र देवना के उपक्रम से मृत घोषित किये गये एव कृष्ण को भी वह मातृत्व का प्यार नही दे सकी। पर जब भगवान नेमिनाथ से उसे विदित होता है कि वे जो छह साधु है, वे उसके ही पुत्र है तो उसका मातृत्व उमड पडता है। ज्यो ही वह मुनियो के पास पहुँचती हे उसकी स्नेह धारा बन्धन तोडकर वह चलती है—

तडाक से तूटी कस कचू तणी रे
थण रे तो छटी दूधाधार रे।
हिवडा माहे हर्ष मावे नही रे,
जाणे के मिलियो मुझ करतार रे ॥४॥
रोम-रोम विकस्या, तन मन उलस्या रे,
नयणे तो छटी आँसू-धार रे।
बिलिया तो बाहा माहे मावे नहीं रे,
जाणे तूट्यो मोत्या रो हार रे ॥५॥[1]

इस मार्मिक एव हृदयस्पर्शी मिलन पर न जाने कितने मातृ हृदय न्योछावर किये जा सकते है। सयोग-वात्सल्य का प्रत्यक्ष रूप वहाँ देखने को मिलता हे जहाँ देवकी की गोद मे गजसुकुमाल किलकारी मारते है। वह उसे प्यार से झूलाती है, आँखो मे अजन आजती है, उन्हे अगुली पकडकर चलना सिखाती हे।[2] इस वर्णन को पढकर लगता है कवि ने माँ का भावुक एव ममताशील हृदय पाया है।

---

रोवतो मे राख्यो नही, कन्हैया, पालणिये पोढाय रे।
हालरियो देवा तणी कन्हैया, म्हारे हूँस रही मन माय रे।
आगणिये न करावी थिरी, कन्हैया, आगुलिया विलगाय रे।
हाऊ वैठो छे तिहा, कन्हैया, अलगो तूँ मति जाय रे।
ओटणियो पहराव्यो नही कन्हैया, टोपी न दीधी माथ रे।
काजल पिण सार्यो नही कन्हैया, फदिया न दीधा हाथ रे॥
—जयवाणी—३३२-३३३

१ जयवाणी,—३३०

२— जीहो खेलावण-हुलरावणे, लाल चुँगावण ने पाय।
जीहो न्हवरावण पेहरावणे, लाला, अगो-अग लगाय ॥८॥

**शृगार रस —**

शान्त रस की प्रधानता होने पर भी शृगार रस के सयोग-वियोग के कई मनोहर चित्र यहा देखने को मिलते है। सयोग का वणन इन रचनाओ मे अधिकाशतया वहाँ हुआ है, जहाँ सयम लेने से पूर्व नायक सासारिक भोगो मे लिप्त हे। देवकी के छह पुत्र माँ सुलसा के घर मे भोग विलास करते है। एक-एक पुत्र के बत्तीस-बत्तीस स्त्रिया है, कि एक से एक खूबसूरत—

**चन्द्र-वदन मृग लोयणी जी, चपल-लोचनी बाल।**
**हरीलकी मृदु-भाषिणी जी, इन्द्राणी सी रूप रसाल ॥देव०॥**
**प्रीतवती मुख आगले जी, मुलकती मोहन-बेल।**
**चतुरा ना मन मोहती जी, हस-गमणी सू करता बहु केल ॥ देव० ॥**[1]

नायक के दीक्षित होते ही शृगार का वियोग पक्ष प्रारम्भ होता है। "भगवान नेमिनाथ" शीर्षक रचना मे राजमती के प्रिय-वियोग के चित्र बहुत ही सुन्दर एव स्वाभाविक बन पडे हैं। विरह मे महल अटारी उसके लिए कटारी बन गये है और चन्द्रकिरणे शीतलता प्रदान करने के बदले उसके तन को जलाती है। उसकी आँखे प्रिय दर्शन को आतुर है—

**तरसत अखियाँ हुई द्रुम पखियाँ।**
**जाय मिलो पिव सू सखिया ॥**
**यदुनाथ रे हाथ री ल्यावे कोई पतिया ॥१॥**[2]

वह प्रिय को उपालम्भ देना चाहती है। 'थे तज राजुल किम गये जतिया' उन्हे सन्देश भिजवाना चाहती है। जो सखी उसका उपालम्भ भरा सन्देश लेकर जायेगी उसको वह गहनो से लाद देगी—

**जाकू दूगी जरावरो गजरो, कानन कू चूनी मौतिया ॥३३॥**
**अगूरी कू मूदडी-औढण कू फमडो पैरण कू रेशमी धोति।**[3]

---

जीहो आँखडली अजावणी, लाला, भाल करावण चद।
जीहो गाला टीकी सावली, लाला, आलिगन आनन्द ॥९॥
जीहो पग-माडण ग्रही अगुली, लाला ठुमक-ठुमक री चाल।
जीहो बोलण भाषा तोतली, लाला, रिझावण अति ख्याल ॥१०॥
—जयवाणी—३३७

१ वही पृ०—३२२
२ जयवाणी, पृ० २२९
३ जयवाणी पृ० २२९-२३०

"ऊभा रो जी, थे रो जी[1] रो जी रो जी ऊभा रो जी" जैसी पक्तियो मे मीरा से कम तडप नही है। उसका यह विरह ही उसे अनन्य प्रेमिका[1] बनाकर उसे भी सयम मार्ग की ओर अग्रसर करता है और अन्त मे वह साधिका बन जाती है। यह सम्पूर्ण सयोग एव वियोग शृगार शान्त रस की पृष्ठभूमि बनकर आया है। कथा का पर्यवसान शान्त रस मे ही होता है।

**वीर रस —**

वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' है। यह उत्साह कभी युद्ध के लिए, कभी दान के लिए, कभी दया के लिए, और कभी धर्म के लिए प्रकट हुआ है। कार्य-भेद के अनुसार वीरो के युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर नाम से चार भेद माने गये है। इन कथा काव्यो के जो नायक है वे सम्भवत चारो ही प्रकार के वीरो की श्रेणी मे आते है। सयम-मार्ग मे अग्रसर होने से पूर्व वे वर्षी दान देते है, सयम की रक्षा के लिए वे उपसर्ग परिषह आदि कठिनाईयो से बडी बहादुरी के साथ लडते है, प्राणीमात्र के प्रति उनके हृदय मे दयाभाव है और धर्मशूर तो वे है ही।

नारद को कहे गये कृष्ण के इन उत्साहपूर्ण शब्दो को देखिए—

**दल बादल पाछा फिरे, फिरे नदिया का पूर।**
**माधव वचन फिरे नहीं जो पिछम ऊगे सूर।[2]**

वीर कृष्ण युद्ध करते है। सभी पाडव भी उनका साथ देते है। इस युद्ध-वर्णन मे कवि ने अनेक वर्णन-रूढियो का सहारा लिया है।[3]

---

१ कुण ताके तारा ने छोड शशी,
म्हारे सावरिया सरीखी सूरत किसी।
म्हे दूजा भरतार नी तृष्णा त्यागी ॥नेमीसर०॥

—जयवाणी पृ० २३०

२ जयवाणी—४१४

३ मिल जग मचायो रे।
गगनबाण करी ने छायो अति घणो रे॥
देवता ने वले देई (वी) रे, विद्याधर केई रे।
मिल आया देखण ने युध अचिरज भयो रे।

—जयवाणी पृ० ४१८

## ४ प्रकीर्णक रचनाएँ

कुछ रचनाएँ कवि की ऐसी भी है जो उक्त तीनो वर्गों मे नही आती, उन्हे हमने प्रकीर्णक वर्ग मे रखा है। ये रचनाएँ—"चन्द्रगुप्त राजा के सोलह सपने", "गौतम-पृच्छा" 'श्रीकृष्ण जी नी ऋद्धि', "भविष्य काल के तीर्थंकर" 'नाक' "दारिद्र लक्ष्मी सवाद" "प्रतिमा चर्चा" हे।

'चन्द्रगुप्त राजा के सोलह सपने" मे चन्द्रगुप्त के सोलह सपनो का लोक-परक अर्थ लगाया गया है[1] जैन साहित्य मे सोलह सपने लिखने की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। यह एक प्रकार का काव्य-रूप है। चन्द्रगुप्त राजा अपने सोलह सपनो का भद्रबाहु से तात्पर्य पूछते हे और भद्रबाहु क्रम से एक-एक का, इस ससार के पचम आरे मे होने वाले परिणामो का अर्थ स्पष्ट करते जाते है।

"गौतम पृच्छा" नामक दो रचनाएँ हे। दोनो मे गणधर गौतम ने भगवान महावीर से प्रश्न किये है। ये प्रश्न भगवती सूत्र मे आये है—

**गौतम स्वामी पूछा करे सूत्र भगवती मॉय हो।**
**स्वामी! प्रत्येक मासरो बालको, नरक किसी विध जाय हो॥**[2]

कवि ने रचना के अन्त मे धर्म की महिमा का प्रतिपादन किया है।[3]

श्रीकृष्ण की समृद्धि एव ऐश्वर्य का वणन किया गया है। द्वारिका नगरी का यह वर्णन देखिये —

**अडतालीस कोस मे लाबी ते जाण जो ए।**
**छत्तीस कोस मे पहुली पिछाण जो ए॥**

---

१ तीजे 'चन्द्रमा चालनी' तिणरो ए फल थासी रे।
समाचारी जुई-जुई बारोट्या धर्म धासी रे॥ चन्द्र॥

२ जयवाणी,—७५

३ इम जाणी धरम कीजिये
राखो ऊजल परिणाम हो।
भविजन, पोसह पडिकमणा करो,
पामो अविचल ठाम हो॥ सा० अ०॥
—जयवाणी,—७६

सोना रो कोट ने रतना रा कागरा ए।
हेठे तो चौडा वलि उपर साकरा ए॥
सतरे गज ऊँचा बारे गज नीव मे ए।
आठ गज चौडाई मे विचलो सीव मे ए॥[1]

कृष्ण से सम्बन्धित लोकोपकारक घटनाओ की ओर भी बहुत सक्षेप मे सकेत किया गया हे।[2] किन्तु यह समस्त सम्पदा देखते ही देखते नष्ट हो गई है। अत कवि अन्त मे इस सासारिक मोह-माया को छोडने एव धर्म से प्रेम रखने की सीख देता हे—

"भविष्यत् काल के तीर्थंकर" मे कवि ने आगामी उत्सर्पिणी मे जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे होने वाले चौबीस तीर्थंकरो के नाम बताये है।[3]

'नाक रखना' मुहावरा हिन्दी साहित्य मे बहुत प्रचलित रहा है। किन्तु इसको लक्ष्य करके पूरी एक रचना लिख देना सन्त कवि जयमल्लजी के बस की ही बात थी। सारे शरीर मे सबसे ऊपर नाक ही है। नाक रखने से तात्पर्य इज्जत रखने से है। अपनी इज्जत बनाये रखने के लिए कोई दान देता है, शूरवीर युद्ध लडता है, साधु सथारा ग्रहण करते है, श्रावक गुरु के पास अपने पापो का प्रत्याख्यान करता है। कवि ने कृष्ण राम, लक्ष्मण एव दशाणभद्र का उदाहरण दिया है कि किस प्रकार इन्होने अपनी इज्जत रखने

---

१ जयवाणी,—१०२

२ महाबलवन्त कालीनाग ने नाथियो।
कस ने मार जरासिंध पछाडियो॥

—जयवाणी,—१०५

३ (१) महापद्म (पद्मनाभ) (२) सूरदेव (३) सुपार्श्व
(४) स्वयप्रभ (५) सर्वानुभूति (६) देवश्रुत
(७) उदय (८) पेढालपुत्र (९) पोट्टिल
(१०) शतकीर्ति (११) मुनिसुव्रत (१२) अमम
(१३) निष्कषाय (१४) निष्पुलाक (१५) निर्मम
(१६) चित्रगुप्त (१७) समाधिजिन (१८) सवरक
(१९) यशोधर (२०) विजय (२१) मल्लि
(२२) देवार्जुन (२३) अनन्तवीर्य (२४) भद्रजिन

(समवायाग १५८ वा समवाय)

—श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, ६—१९७

**रौद्र रस —**

कई स्थानो पर रौद्र रस का भी वर्णन मिलता है। रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। आलम्वन शत्रु या अनुचित कार्य-कर्ता होते हे। कृष्ण द्वारा भेजे गए दूत को पद्मोत्तर बुरा भला कह देते है, तव रौद्र रस का प्रसग उपस्थित होता हे—

> **सिह रे मुडा माय, काई घाले आगुली रे।**
> **असवारा री होड करे डोशी पागुली रे॥**

यहाँ रौद्र रस का आलम्बन कृष्ण स्वय हे, आश्रय पद्मोत्तर राजा है, उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत पद्मोत्तर राजा द्वारा इनको बुरा-भला कहना है।

**करुण रस —**

शोक अथवा दुख की दशाओ के वर्णन मे करुण-रस होता है। करुण रस का स्थायी भाव शोक है। यद्यपि शास्त्रीय लक्षणो से युक्त करुण रस का चित्रण इन कथा-काव्यो मे नही मिलता है, किन्तु फिर भी पाठक के मन मे करुण-भावो का उद्रेक इन रचनाओ को पढने से अनेक स्थलो पर हो जाता है। नेमिनाथ-राजमती के प्रसग मे वदी पशुओ से सम्बन्धित यह करुण भाव देखिए—

> सीचाणा सारस घणा, जीव तणी घणी जात।
> जादवराय! रोकी ने राख्या पीजरे, दुख करै दिन रात॥
> जादवराय! तुम बिन करुणा कुण करै॥
> हरिण सूसा ने बाकरा, सूर सावर ने मोर।
> दयालराय! केई बाडे केई पीजरे, दुखिया कर रया शोर॥
> दयालराय! तुम बिन करुणा कुण करे॥
> हिरणियो हिरणी ने कहे बाहिर रह गया बाल।
> दयालराय! चूगो पाणी लेवा भणी, कुण करसी साल-सभाल॥
> पूरे मासे पारेवडी इम करे अरदास।
> जादव राय! बधन पडिया पग माहरे, ढीला करै कोई पास।[1]

---

१ जयवाणी—२२५

**रोद्र रस —**

कई स्थानो पर रौद्र रस का भी वर्णन मिलता है। रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। आलम्बन शत्रु या अनुचित कार्य-कर्ता होते हे। कृष्ण द्वारा भेजे गए दूत को पद्मोत्तर बुरा भला कह देते है, तब रौद्र रस का प्रसग उपस्थित होता हे—

> **सिह रे मुडा माय, काई घाले आगुली रे।**
> **असवारा री होड करे डोशी पागुली रे ॥**

यहाँ रौद्र रस का आलम्बन कृष्ण स्वय है, आश्रय पद्मोत्तर राजा है, उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत पद्मोत्तर राजा द्वारा इनको बुरा-भला कहना है।

**करुण रस —**

शोक अथवा दुःख की दशाओ के वर्णन मे करुण-रस होता है। करुण रस का स्थायी भाव शोक है। यद्यपि शास्त्रीय लक्षणो से युक्त करुण रस का चित्रण इन कथा-काव्यो मे नही मिलता है, किन्तु फिर भी पाठक के मन मे करुण-भावो का उद्रेक इन रचनाओ को पढने से अनेक स्थलो पर हो जाता हे। नेमिनाथ-राजमती के प्रसग मे बदी पशुओ से सम्बन्धित यह करुण भाव देखिए—

> सीचाणा सारस घणा, जीव तणी घणी जात।
> जादवराय! रोकी ने राख्या पीजरे, दुख करै दिन रात ॥
> जादवराय! तुम बिन करुणा कुण करै ॥
> हरिण सूसा ने बाकरा, सूर साबर ने मोर।
> दयालराय! केई वाडे केई पीजरे, दुखिया कर रया शोर ॥
> दयालराय! तुम बिन करुणा कुण करे ॥
> हिरणियो हिरणी ने कहे बाहिर रह गया बाल।
> दयालराय! चूगो पाणी लेवा भणी, कुण करसी साल-सभाल ॥
> पूरे मासे पारेवडी इम करे अरदास।
> जादव राय! बधन पडिया पग माहरे, ढीला करै कोई पास।[1]

---

१ जयवाणी—२२५

हास्य रस —

कवि ने हास्य एव व्यग्य के भी कतिपय अवसर उपस्थित किए है। नेमिनाथ विवाह के लिए इच्छुक नही है। इसके कारणो की कल्पना हास्य-व्यग्य-प्रसूत है। कृष्ण की रानियाँ उन्हे चिढाने के लिए कभी तो कहती हे कि "तौरण आया करे आरती, टीको काढने सासु खाचे नाक रे" अत इस डर के कारण ये विवाह नही करते, कभी कहती है—"बाई चित करने चवरी चढे तीने फेरा लेणा पडे लारे रे" अत 'इम डर तो परणे नही रहे' एव कभी कहती हे—"जुवाजुई रमता थका रखे बनडो जावै हारो है बाई" और कभी "दौरो है काकण डोरडो खेलणो पडे एकण हाथ है बाई।" उधर राजुल की सखियाँ भी उससे हँसी-मजाक करती हैं—

सहिया कहे राजुल ! सुणो,
बाई ! कालो नेम कुरुपो ए !
भल भूपो ए—
और भलेरो लावसा के सहिया ए ॥
करी कुसामदी ताहरी,
पिण म्हारे दाय न आयो ए—
न सुहायो ए।
कालो वर किण कामरो क सहिया ए ॥[1]

इस प्रकार सन्त कवि जयमल्लजी मे प्रबन्ध-पटुता वर्णन-कौशल और रसोपलब्धि कराने की अद्भुत क्षमता है। इनकी रचनाओ मे कबीर का सा विद्रोह, सूर का वात्सल्य और तुलसी की सी लोकहित की भावना का अपूर्व सगम देखा जा सकता है। कवि यद्यपि रीतिकाल मे पैदा हुए, पर उन्होने वैभव विलास पूर्ण सामन्ती जीवन को महत्व न देकर सरल साधनामय आध्यात्मिक जीवन को ही महत्व दिया। ये किसी के आश्रित कवि नही थे। अत इन्हे किसी लौकिक पुरुष का प्रशस्तिगान नही करना पडा। इनके काव्य मे मानवता का जो सन्देश है, वह शताब्दियो तक लोगो को सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा देता रहेगा।

---

१ जयवाणी—२३२

## ४ प्रकीर्णक रचनाएँ

कुछ रचनाएँ कवि की ऐसी भी है जो उक्त तीनो वर्गों मे नही आती, उन्हे हमने प्रकीर्णक वर्ग मे रखा है। ये रचनाएँ—"चन्द्रगुप्त राजा के सोलह सपने", "गौतम-पृच्छा" 'श्रीकृष्ण जी नी ऋद्धि', "भविष्य काल के तीर्थंकर" 'नाक' "दारिद्र लक्ष्मी सवाद" "प्रतिमा चर्चा" है।

'चन्द्रगुप्त राजा के सोलह सपने" मे चन्द्रगुप्त के सोलह सपनो का लोक-परक अर्थ लगाया गया है[1] जैन साहित्य मे सोलह सपने लिखने की एक सुदीर्घ परम्परा रही हे। यह एक प्रकार का काव्य-रूप है। चन्द्रगुप्त राजा अपने सोलह सपनो का भद्रबाहु से तात्पर्य पूछते हैं और भद्रबाहु क्रम से एक-एक का, इस ससार के पचम आरे मे होने वाले परिणामो का अर्थ स्पष्ट करते जाते है।

"गौतम पृच्छा" नामक दो रचनाएँ हे। दोनो मे गणधर गौतम ने भगवान महावीर से प्रश्न किये हे। ये प्रश्न भगवती सूत्र मे आये है—

**गौतम स्वामी पूछा करे सूत्र भगवती मॉय हो।**
**स्वामी ! प्रत्येक मासरो बालको, नरक किसी विध जाय हो ॥[2]**

कवि ने रचना के अन्त मे धर्म की महिमा का प्रतिपादन किया है।[3]

श्रीकृष्ण की समृद्धि एव ऐश्वर्य का वर्णन किया गया है। द्वारिका नगरी का यह वर्णन देखिये —

**अडतालीस कोस मे लाबी ते जाण जो ए।**
**छत्तीस कोस मे पहुली पिछाण जो ए ॥**

---

१ तीजे 'चन्द्रमा चालनी' तिणरो ए फल थासी रे।
समाचारी जुई-जुई बारोट्या धर्म धासी रे ॥ चन्द्र ॥

२ जयवाणी,—७५

३ इम जाणी धरम कीजिये
राखो ऊजल परिणाम हो।
भविजन, पोसह पडिकमणा करो,
पामो अविचल ठाम हो ॥ सा० अ० ॥
—जयवाणी,—७६

सोना रो कोट ने रतना रा कागरा ए।
हेठे तो चौडा वलि उपर साकरा ए॥
सतरे गज ऊँचा वारे गज नीव मे ए।
आठ गज चौडाई मे विचली सीव मे ए॥[1]

कृष्ण से सम्बन्धित लोकोपकारक घटनाओ की ओर भी वहुत सक्षेप मे सकेत किया गया है।[2] किन्तु यह समस्त सम्पदा देखते ही देखते नष्ट हो गई है। अत कवि अन्त मे इस सासारिक मोह-माया को छोडने एव धर्म मे प्रेम रखने की सीख देता है—

"भविष्यत् काल के तीर्थंकर" मे कवि ने आगामी उत्सर्पिणी मे जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे होने वाले चौवीस तीर्थंकरो के नाम वताये है।[3]

'नाक रखना' मुहावरा हिन्दी साहित्य मे वहुत प्रचलित रहा है। किन्तु इसको लक्ष्य करके पूरी एक रचना लिख देना सन्त कवि जयमल्लजी के वस की ही वात थी। सारे शरीर मे सवसे ऊपर नाक ही है। नाक रखने से तात्पर्य इज्जत रखने से है। अपनी इज्जत वनाये रखने के लिए कोई दान देता है, शूरवीर युद्ध लडता है, साधु सथारा ग्रहण करते है, श्रावक गुरु के पास अपने पापो का प्रत्याख्यान करता है। कवि ने कृष्ण राम, लक्ष्मण एव दशाणभद्र का उदाहरण दिया है कि किस प्रकार इन्होंने अपनी इज्जत रखने

---

१ जयवाणी,—१०२

२ महावलवन्त कालीनाग ने नाथियो।
कस ने मार जरासिध पछाडियो॥
—जयवाणी,—१०५

३ (१) महापद्म (पद्मनाभ) (२) सूरदेव (३) सुपार्श्व
(४) स्वयप्रभ (५) सर्वानुभूति (६) देवश्रुत
(७) उदय (८) पेटालपुत्र (९) पोट्टिल
(१०) शतकीर्ति (११) मुनिसुव्रत (१२) अमम
(१३) निष्कपाय (१४) निष्पुलाक (१५) निर्मम
(१६) चित्रगुप्त (१७) समाधिजिन (१८) सवरक
(१९) यशोधर (२०) विजय (२१) मल्लि
(२२) देवार्जन (२३) अनन्तवीर्य (२४) भद्रजिन
(समवायाग १५८ वा समवाय)
—श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, ६—१९७

के लिए भयकर कष्टो का सामना किया। शारीरिक सौन्दर्य नाक के शृङ्गार से ही बढता है।[1] सबसे पहले अरिहन्त, सिद्ध एव साधु को वन्दन भी नाक ही करता है।

"दारिद्र-लक्ष्मी सवाद" मे दरिद्रता एव लक्ष्मी का मानवीकरण कर दिया गया है। वे आपस मे वार्तालाप करती है। वसन्तपुर नगर के सेठ सागरदत्त के यहाँ पूर्वजन्म के पापो के परिणाम स्वरूप दरिद्रता घर मे आ गई। सागरदत्त उज्जयिनी नगरी मे दरिद्रता का सौदा करता है। धनदत्त दरिद्रता को घर ले आता है लक्ष्मी के बदले, किन्तु दरिद्रता उसके यहाँ नही रहती एव वापस लक्ष्मी ही आ जाती है। लक्ष्मी को केवल वही व्यक्ति पुण्यवन्त लगा। इस रचना मे कवि ने प्रतिपादित किया है कि गरीबी एव अमीरी अपने कर्मों के फलस्वरूप ही मिलती है।

"प्रतिमा चर्चा" रचना मे कवि ने मूर्तिपूजा का खडन किया है। कवि ने अनेक सूत्रो का उल्लेख कर बताया है कि कोई भी सूत्र मूर्ति-पूजा का समथन नही करता, पर यद्यपि इन सूत्रो से आई बातो का मूर्तिपूजक व्यक्ति अपने पक्ष मे भी अर्थ लगा लेता है। कवि का कथन है कि प्रतिमा-पूजा मे आरम्भ-समारम्भ ज्यादा करने पडते है। कवि पर लोकाशाह का प्रभाव स्पष्ट दृष्टि-गोचर होता है। लोकाशाह के समय मूर्ति पूजा का जोरदार शब्दो मे खण्डन हो रहा था। कबीर भी लोकाशाह के ही समकालीन है। कबीर ने भी मूर्ति पूजा का खडन किया है।[2]

इसके अतिरिक्त कवि ने साधु की चर्चा, साधु के दस धर्म, महाव्रत आदि आध्यात्मिक विषयो पर भी कई दोहे लिखे है। विषय विविधता के कारण इन दोहो को भी हमने प्रकीर्णक रचनाओ मे ही सम्मिलित किया है। कुछ दोहे देखिए—

---

१　नाके सोभे तिलक सुहामणो रे,
　बली मोती चुनी श्रीकार रे।
　नाक बिना गहणा सोभे नही रे,
　सगले डील तणो सिंणगार रे॥
　　　　　　—जयवाणी,—१८०

२　पाहन पूजे हरि मिले, तो मै पूजूँ पहार।
　ता ते तो चाकी भली, पीस खाय ससार॥

(१) नमस्कार—

नमो सिद्ध निरजन, नमू श्री सतगुरु पाय।
धन वाणी जिनराज री, सुणियाँ पातिक जाय ॥[1]

(२) गुण-स्थान-विचार—

तेरे बारे तीसरे, नही करे गुण-ठाणे काल।
चतुर पच छठ सात मे गोत्र बाँधे दीनदयाल ॥[2]

(३) पुद्गल-विषयक-विचारणा—

विस्सा हाथ आवे नहीं मिस्सा जीव रहत।
जीव सहित ते पओगसा श्री जिन-वाणी तहत्त ॥[3]

(५) भिक्षा-विचार—

अगन्यात कुल मुनिवर तजे करे गोचरी छाडी काल।
कर खरडे अणखरडिये, धन ऋषि दीनदयाल ॥[4]

## कला-विधान :

मनुष्य-मात्र की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह एक ओर अपने भावो, विचारो और आकाक्षाओ की अभिव्यजना करना चाहता है तो दूसरी ओर अपने सौन्दर्य-ज्ञान के द्वारा उन्हे सुन्दरतम बनाकर उनमे एक अद्भुत चमत्कार भी उत्पन्न करना चाहता है। इन्ही दो तत्त्वो के कारण काव्य के भी दो आधार-भूत तत्त्व हो जाते है—एक भावपक्ष और दूसरा कलापक्ष। इन दोनो पक्षो का समुचित सयोग एव सामजस्य ही श्रेष्ठ काव्य का लक्षण है। भावपक्ष एव कलापक्ष का परस्पर आत्मा और शरीर का सम्बन्ध है। कलापक्ष कविता का साधन-मात्र हे। काव्य का उद्देश्य प्रेपणीयता एव प्रभावोत्पादकता है। कला-पक्ष इस प्रेपणीयता को पथ देता है।

सत कवियो ने काव्य को साधन रूप मे ही स्वीकार किया हे। उनका प्रमुख उद्देश्य अपने सिद्धान्तो का प्रचार करना होता था। वे अपने विचारो को साधारणजन तक पहुँचाने के लिए ही कविता करते थे। अत कलापक्ष की

---

१ ज्यवाणी—५०६
२ वही—५०६
३ वही—५१०
४ वही—५१६

ओर उनका आग्रह नही रहता था। फिर भी उनकी कविता मे कवित्व का नितान्त अभाव नही है। ये कवि अनुभूति मे जितने सच्चे और खरे है अभिव्यक्ति मे भी उतने ही स्पष्ट और सीधे। इन्हे चमत्कार का प्रदर्शन कर किसी का हृदय जीतना नही था। काव्य के माध्यम सजीवन-निर्माण की सही दिशा बताना ही इनका लक्ष्य था। इस कसौटी पर सन्त कवि जयमल्लजी की काव्यकला खरी उतरती है।

**भाषा—**

भावो को अभिव्यक्ति देने के लिए भाषा अनिवार्य तत्त्व है। जयमल्लजी के समय साहित्य-जगत मे प्रधान रूप से दो साहित्यिक भाषाएँ—पिंगल और डिंगल प्रचलित थी। जयमल्लजी जनसाधारण को भिन्न-भिन्न विषयो पर धर्मोपदेश देना चाहते थे। अत उन्होने भाषा का प्रचलित व्यावहारिक रूप ही अपनाया। वे अपनी बात जनता की ही भाषा मे कहने के अभ्यस्त थे। सस्कृत, प्राकृत भाषा के अनेक ग्रन्थो का अध्ययन करने के साथ ही साथ वे इन भाषाओ के अच्छे ज्ञाता भी थे, किन्तु उन्होने अपनी रचनाएँ बोलचाल की सरल राजस्थानी भाषा मे ही लिखी है, इसका स्पष्ट कारण यही है कि इनका विहार-क्षेत्र एव कार्य-क्षेत्र भी अधिकतर राजस्थान ही रहा।

भाषा पर कवि का अच्छा अधिकार है। वह भावानुकूल उठती-गिरती है। प्रबन्ध-रचनाओ मे भाषा का प्रवाह एव माधुर्यगुण सुरक्षित है तो मुक्तक रचनाओ मे उसका गाम्भीर्य और सारल्य। भाषा की प्रवाहमानता एव मधुरता के लिए यह उदाहरण देखिये—

महाराज चढे गज रथ तुरिया—
हय गय रथ पायक—
सुख-दायक
नयन-कमल हसरत ठरियाँ ॥ महा० ॥
खूब बारात बनी ब्यावन की।
घोर घटा उमटी झरिया ॥ महा० ॥
लाल गुलाल, अबीर अबारवो।
चऊ दिस नाच रही परियाँ ॥ महा० ॥[1]

---

१, जयवाणी पृ० ३९७

**शब्द-प्रयोग—**

वाक्य की रचना शब्दो से होती है। शब्द-चयन से ही कवि की कुशलता एव विद्वत्ता का परिचय मिलता है। इसलिए भाषा के विवेचन मे कवि के शब्द-चयन और शब्द-भडार पर विचार करना आवश्यक होता हे। आलोच्य कवि जयमल्लजी की रचनाओ मे प्रयुक्त शब्द-कोष पर ध्यान देने से ही इनकी भाषा का स्वरूप समझा जा सकता है। उनके द्वारा प्रयुक्त प्रमुख शब्दो का परिचय इस प्रकार दिया जा सकता हे।

(१) तत्सम-शब्द –

कवि की रचनाओ मे सस्कृत शब्दावली से बोझिल भाषा नही मिलती। इसका स्पष्ट कारण कवि की उपदेश-वृत्ति हे। जनसाधारण तक अपनी बात को पहुँचाने के लिए कवि ने सीधी एव सरल भाषा का ही प्रयोग किया है। फिर भी तत्सम शब्दो के प्रयोग से वह नही बच सकता है। निम्नलिखित पक्तियो मे परम्परागत उपमानो को स्पष्ट करने के लिए तत्सम शब्दावली का प्रयोग द्रष्टव्य हे—

(१) अधर **शशी सम सोभतो,**
पुनि पूरण भरियो भाल रे लाला।
**नयन-कमल** जिम **विकसता,**
वेहु बाह **कमल** नी लाल रे लाला॥[1]

(२) **भविक** जीव **प्रतिबोधता,** जिनवर करे विहार
पाप **तिमिर** निघटिया, **सहस्र-किरण दिन-कार**॥[2]

प्रयुक्त तत्सम-शब्दो मे से कुछ ये हे—स्फटिक, सम्यक्त्व, शत्रुञ्जय, दीक्षा, स्निग्ध, सैंधव, आश्रव, निर्जरा, लवण, मध्या, शुश्रुषा, मनुज, दुर्लभ, कामिनि, अक्षय, अमृत, निर्वाण, अविनाशी, तिमिर, कमल, ज्ञान, अज्ञान, जग, अनादि उपसर्ग, विकट, अतिशय, निश्चय, व्यवहार आदि।

(२) तद्भव शब्द—

तद्भव का शाब्दिक अर्थ तत्+भव अर्थात् सस्कृत से उत्पन्न शब्द है। तद्भव शब्दो का मूल सस्कृत मे मिलता हे पर वे घिसपिट कर मूलरूप मे

---

१ जयवाणी —३६७
२ जयवाणी,—-५

काफी दूर चले जाते है। कवि ने तत्सम शब्दो की अपेक्षा तद्भव एव देशी शब्दो का प्रयोग ही अधिक किया है। इनकी रचनाओ मे प्रयुक्त तद्भव शब्द इस प्रकार है—

दीख (दृष्टि), कसवोही (खुशबू), शीयल (शील), नागज (नाग), पागुर्या (पागुला), श्रावग (श्रावक), लक्कड (लकडी काष्ट), उच्छाह (उत्साह), मेह (मेघ), खाडा (खड्ग), झीणो (क्षीण), रतन (रत्न), मूरख (मूर्ख), मिरखावाद (मृषावाद), तीरथ (तीर्थ), आतम (आत्म), गाँव (ग्राम), चौथे (चतुर्थ), आदि।

**(३) देशी-शब्द—**

देशी शब्द वे शब्द होते है जिनकी उत्पत्ति सस्कृत शब्दो मे नही ढूंढी जा सकती। ये किसी भापा विशेप मे ही प्रयुक्त होते है। जयमल्लजी का विचरण क्षेत्र एव प्रवचन-क्षेत्र राजस्थान ही रहा था। अत इनकी भापा मे राजस्थानी के ही शब्द अधिकाशतया प्रयुक्त हुए है—

उधी, बोल्वे, धमकाय, तेडाय, लुगाई, डेहडायमानो डबक्डोलो, धगारो, आडो, लूगडी, बापडा, टेगार, भोल्या, डिचकारी, ढाढा, दुडबडियो, घटार, मठारिया, राघण आदि।

**(४) विदेशी-शब्द—**

कवि ने कई उर्दू फारसी के विदेशी शब्दो को भी नि सकोच ग्रहण किया है, यथा—मेज जमाली, कितोल, पेजार, तायफा, दीदार, गबरा, गालम, बखतावर, कुरान आदि।

**खडीबोली का प्रयोग—**

कवि की भाषा खडीबोली मिश्रित राजस्थानी भापा है। बोलचाल की राजस्थानी भापा होने के कारण उसमे खडीबोली के शब्दो की बहुलता है। उत्तम पुरुप सर्वनाम के स्थान पर "मै" का भी प्रयोग मिलता है—

"मैं नीठ-नीठ ब्याव मनायोरे"

कही-कही गुजराती भाषा की विभक्तियाँ भी प्रयुक्त हुई है, जैसे-तुमेरचो।

कही-कही पर प्राकृत भाषा की शब्दावली का प्रयोग भी हुआ है। इससे सास्कृतिक वातावरण के निर्माण मे विशेप सहायता मिलती है, जैसे—
"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया।"

पारिभाषिक शब्दावली—

कवि के शब्द-चयन की एक विशेषता पारिभाषिक शब्दावली भी है। तत्सम, तद्‌भव, देशी एव विदेशी शब्दो के प्रयोग के अलावा जैन-दर्शन के तत्त्वो का विवेचन पारिभाषिक शब्दो के द्वारा किया गया है। ऐसे स्थल जैन-दर्शन से अपरिचित व्यक्तियो के लिए अवश्य दुर्बोध हो गये है, पर जिसे जैन-दर्शन का थोडा-सा भी ज्ञान है, वह रस लिए बिना नही रहेगा। कुछ पारिभाषिक शब्द इस प्रकार है—

(१) आश्रव

जिन से आत्मा मे आठ प्रकार के कर्मों का प्रवेश होता है वह आश्रव है[१]। कवि ने 'सुबाहु कुमार' एव 'उदाई राजा' रचना मे आश्रव, निर्जरा आदि शब्दो का प्रयोग किया है।[२]

(२) कषाय

जो शुद्ध स्वरूपवाली आत्मा को कलुषित करते है अर्थात् मल से मलीन करते है वे कषाय है। कवि ने उपदेशपरक रचनाओ मे कषाय को त्यागने की बात कही है। चारो कषाय-क्रोध, मान, माया, एव लोभ को त्यागने की बात कवि 'ब्रह्मचर्य विषयक स्तवन' मे कहता है।[3]

(३) कर्म

आत्म प्रदेशो के साथ बध को प्राप्त कार्मण वर्गणा के पुद्‌गल ही कर्म कहलाते है। सिद्ध, अरिहन्त, आचार्य आदि के सम्बन्ध मे कवि ने कर्मों की चर्चा की है[४]।

(४) गुप्ति

अशुभ योग से निवृत्त होकर शुभ-योग मे प्रवृत्ति करना गुप्ति है।

---

१ श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह—भाग १ पृ० २६८ (समवयाग सूत्र)

२ आस्रव सवर ने निर्जरा जाण्या छे बध ने मोखो रे।

—जयवाणी—२०८

३ क्रोध, मान, माया लोभ ने त्यागी, शील पाले नव वाडी रे॥

—जयवाणी—५०

४ आठो कम खपाय के कीधो भवनो अन्त,

—जयवाणी—२७

(५) दण्ड

जो चरित्ररूपी आध्यात्मिक ऐश्वर्य का अपहरण कर आत्मा को असार कर देता है वह दण्ड है। दण्ड को लेकर कवि ने एक स्वतन्त्र रचना की है—"चौवीस दण्डक नी सज्झाय।"

(६) निगोद

साधारण नामकर्म के उदय से एक ही शरीर को आश्रित करके जो अनन्त जीव रहते ह वे निगोद कहलाते ह। यह "जग सपना" मे कवि कहता है कि "नरक निगोद मे भमता रे पाणी—मानव नो भव पाया है।"

(७) निर्जरा

आत्मा का कर्म वर्गणा से एकदेशत दूर होना तथा जीव रूपी कपडा कर्म रूपी मेल, ज्ञानरूपी पानी तप-सयमरूपी साजी साबुन उससे धोय के मैल को निकाले उसे निर्जरा कहते है[1]। "आस्रव सवर निर्जरा बध मोक्ष वले थापो रे।"

(८) परीषह

आपत्ति आने पर भी सयम मे स्थिर रहने के लिए तथा कर्मो की निर्जरा के लिए जो शारीरिक तथा मानसिक कष्ट सहने पडते ह, उन्हे परीषह कहते है—"परीषह सब सहेय"।

(९) प्रतिक्रमण

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग से हटाकर आत्मा को फिर से सम्यग्दर्शन, ज्ञान एव चारित्र मे लगाना प्रतिक्रमण कहलाता है।

(१०) सामायिक

राग-द्वेष के वश न होकर समभाव मे रहना, एव आत्मा मे ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणो की वृद्धि करना सामायिक है। कवि अनेक स्थलो पर सामायिक व प्रतिक्रमण करने की बात कहता है[2]।

(११) प्रायश्चित

अतिचार की विशुद्धि के लिए आलोचना करना या उसके लिए गुरु के

---

१ पच्चीस बोल का थोकडा—पृ० २३

२ सामायिक पोपह कर वले पडिकमणो विशेपो रे।

—जयवाणी—३६२

कहे अनुसार तपस्या आदि करना प्रायश्चित है। "शल्य छत्तीसी" मे कवि किसी भी प्रकार का शल्य नही रखने की बात कहता है। उसके लिए दस प्रकार के प्रायश्चित लेकर शल्य निकालने की भी बात कही गई है[1]।

(१२) मगल

साधारण लोक मे मगल का अर्थ उत्तम होता है। शादी व्याह मे गाये जाने वाले गीतो को भी मगल कहते है। मगल काव्यो की एक सुदीर्घ परम्परा भी है। यहाँ मगल से तात्पर्य—अरिहत सिद्ध, साधु एव केवली प्ररूपित धर्म, इन चार मगलो से है। ये मगल लोक मे उत्तम एव शरण देने वाले है। इन चारो मगलो पर कवि ने पृथक-पृथक रचनाएँ भी की है[2]।

(१३) लेश्या

जिसमे कर्मो का आत्मा के साथ सम्बन्ध हो, उसे लेश्या कहते है।

(१४) शल्य

जिससे वाधा एव पीडा हो उसे शल्य कहते है, लौकिक अर्थ मे शल्य से तात्पर्य काँटे से है। ऐसा शल्य द्रव्य-शल्य होता है। इसका प्रभाव या चोट क्षणिक होती है। किन्तु भाव शल्य का प्रभाव पर-भव मे भी देखा जा सकता है। अत शल्य कोई भी नही रखना चाहिए। 'शल्य छत्तीसी' मे कवि ने ऐसे भाव स्पष्ट किये है[3]।

(१५) श्रावक

साधुओ की उपासना करने वाला उपासक अर्थात् श्रावक कहलाता है। कवि ने अनेक श्रेष्ठ श्रावको के चरित्र का गुणगान किया है, यथा श्रावक महाशतक का चरित्र। कई रचनाओ मे श्रावक के १२ व्रतो का एव इक्कीस गुणो का वर्णन किया गया है[4]।

---

१ 'प्रायश्चित दस प्रकार ना लेई ने शल्य काढीजे।

—जयवाणी—१६८

२ पहले मगल अरिहन्त नो, दूजो सिद्ध मगलीक।
तीजो मगल साधुनो, चौथो दया-धर्म ठीक॥

—वही—२३

३ शल्य कोई मत्त राखजो शल्य राखा दु ख होय।

—जयवाणी १६८

४ दृढ धर्मी श्रावक हुवो एक मुगत जावण सू प्रीतिजी।

—जयवाणी—३८७

(१६) सम्यक्त्व

सुदेव, सुगुरु एव सुधम मे विश्वास होना सम्यक्त्व है ।[1]

(१७) समिति

प्रशस्त एकाग्र परिणामपूर्वक की जाने वाली आगमोक्त सम्यक प्रवृत्ति करना समिति है ।[2]

(१८) सवर

कम बध के कारण प्राणातिपात आदि जिससे रोके जाय वह सवर ह ।

कई सख्यात्मक पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग भी कवि ने किया हे, इन्हे हम शब्द रूढियाँ भी कह सकते है—

| | |
|---|---|
| तीन— | गढ, गुप्ति, शल्य |
| चार— | कषाय, गति, मगल |
| पाच— | निद्रा, महाव्रत, समिति |
| छ— | आरे, काया, द्रव्य |
| सात— | नरक, व्यसन |
| आठ— | कर्म |
| नौ— | घाटी, तत्त्व |
| दस— | प्रायश्चित, सम्यकत्व, वेदना, धर्म |
| ग्यारह— | गणधर, श्रावक की प्रतिमा |
| बारह— | चक्रवर्ती, तप, भावना, श्रावक के व्रत, साधु की प्रतिमा |
| चोदह— | गुण स्थान, दान, राजू |
| पन्द्रह— | कर्मादान, परमाधर्मी देव, सिद्ध । |
| सोलह— | सतियाँ, स्वप्न |
| सत्तरह— | सयम |
| अठारह— | पाप |
| बीस— | विहरमान |
| इक्कीस— | श्रावक के गुण |
| बाईस— | परीषह |

---

१ दृढ समकित पाले तिके, वेगा शिवपुर जाय ।

—जयवाणी—६४

२ इन सभी शब्दो की परिभाषाएँ श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह के सातो भाग मे से ली गई है ।

| | |
|---|---|
| चावीम— | तीर्थंकर, दण्डक |
| चौतीस— | अरिहतो के अतिशय |
| पैंतीस— | अरिहन्तो की वाणी के गुण |
| वयालिस— | आहार के दोप |
| चौंसठ— | सतियाँ, इन्द्र |

इनका उल्लेख कवि की रचनाओ मे यथा-स्थान देखा जा सकता हे।

**मुहावरे एव लोकोक्तियाँ—**

मुहावरे एव लोकोक्तियाँ काव्य के ही अग होते है। ये अर्थ की व्यजना और मार्मिकता मे विशेप सहायक होते ह। भापा को प्रौढ एव चम्त्कृत वनाने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। लोकोक्तियो एव मुहावरो से लक्ष्यार्थ या व्यग्यार्थ ग्रहण किया जाता हे। सन्त कवि जयमत्लजी ने अपनी रचनाओ मे प्रेपणीयता एव प्रभावोत्पादकता वढाने के लिए मुहावरो एव लोकोक्तियो का भी यथा स्थान प्रयोग किया हे, यथा—

(१) दव रा दाधा पालवे, नही पालवे जीभरा दाधारे ॥[1]

(२) जिण घर नो तु टुकडो खावे, सो घर नाखे ढाईरे ॥[2]

(३) लोक वतावे ऊँगली एहवो काम न कीजे रे ॥[3]

(४) नाक राखणो जग मे दोहिलो रे
सोहिलो सगलो ही काम रे।[4]

(५) वमिया आहार की हो, वाछा कुण करे।
करे छे कुतरो ने काग ॥[5]

(६) मेण दाँत लोहना चणा, कुण सकेला चाय।[6]

(७) जो कोई खून हुवे मुज अन्दर तो दू साख भराई।
पिण कहो जुग मे न्याय करे कुण, जो हुवे राय अन्याई ॥[7]

---

१ जयवाणी पृ० स० ६७
२ वही—११७
३ वही—१६८
४ वही,—१७८
५ वही,—१८३
६ वही,—२१३
७ वही,—२२६

(८) गज असवारी छोडने हो, मुनिवर ।
खर ऊपर मति वेस ।[1]

(९) हुवे दुषमण कपडा डील रा जव करम उदय हुवे आय रे ।[2]

(१०) हाथ कॉकण सी आरसी, इहॉ छे नेम जिणन्द ।[3]

(११) निरखतॉ नयण धापे नही,
अवर चिन्ता नही आवे जी ॥[4]

(१२) हाथ छोडी कुण करे पेट माहिली आस ।[5]

अलकार—

अलकार के प्रयोजन के सम्वन्ध मे भारतीय काव्य शास्त्रियो मे मत-विभिन्न रहा ह । एक पक्ष ने "अलकरोतीत्यलकार" कह कर अलकार को परिभापित किया हे तो दूसरे पक्ष ने कहा है—**अलक्रियते अनेन अलकार ।** ध्वनिकार आनदवधनाचाय ने वाग्विकल्पो के प्रकार को ही अलकार कहा हे ।[6] कुन्तक ने इसी वैदग्ध्यपूर्ण भगी भणिति को वक्रोक्ति (अलकार) माना हे[7] । वामन के अनुसार काव्यग्रहण का कारण उसकी अलकारिता हे[8] । "सौन्दर्यमलकार" अर्थात् सौन्दर्य ही अलकार हे । आचाय दण्डी ने काव्य के शोभाकारक धर्मो को ही अलकार माना है ।[9]

इन सब परिभापाओ का समाहार करते हुए प्रसिद्ध रसवादी आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण मे लिखा है—

१ वही—२३४
२ वही—२९०
३ वही—३२५
४ वही—३५४
५ वही—३७४
६ अनन्ताहि वाग्विकल्प तत्प्रकाश एव चालकार ।
—ध्व यालोक—आनन्दवधनाचाय का० द० रामदहिन मिश्र पृ० ३२१
७ उभावेतप्वलकारयोस्तयो पुनरलकृति ।
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभगी भणितिरुच्यते ।
—(वक्रोक्तिजीवित आचार्य कुतक) का द० रामदहिन मिश्र
८ काव्य ग्राह्यमलकारात् । सौन्दर्यमलकार ।
—काव्यालकारसूत्र, १।१।३
९ काव्यशोभाकरान् धर्मानलकारान् प्रच्यक्षते ।
—काव्यादश आचाय दण्डी, २।१

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा शोभातिशायिन ।
रसादीनुपकुर्वन्तोलकारास्ते गदादिवत् [1]।

उक्त सभी परिभाषाओ मे अलकार को अस्थिर धम माना गया है, किन्तु वह साहित्य हेय है जहाँ अलकार अलकार्य बन बैठते हे । मम्मट के अनुसार अलकार वही हे जो अलकार्य की शोभा बढाता है ।

उपर्युक्त परिभाषाओ से अलकार्य—अलकार के पारस्परिक सबध विषयक तीन पक्ष दिखाई देते है—

(१) प्रथम देहवादियो का, जो अलकारो को काव्य की आत्मा मानते ह। भामह, दण्डी, उद्भट, जयदेव आदि इसी पक्ष के हे ।

(२) दूसरे पक्ष मे रसवादी आते हे, जो अलकारो को रस के साधन या उपकारक रूप मे मानते हे । इनमे आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ आदि प्रमुख है ।

(३) तीसरा पक्ष अलकार एव अलकार्य को अभिन्न मानने वालो का है। इसके प्रमुख समर्थक कुन्तक है ।

सन्त कवियो ने अलकारो का प्रयोग इन उपर्युक्त तीनो दृष्टियो से नही किया है । इन्होने अलकारो का प्रयोग न तो चमत्कार-प्रदर्शन के लिए किया है, न शोभावधक तत्व मानकर और न अलकार अलकार्य को अभेद समझकर ही । उनके काव्य मे अलकार अनायास ही आ गये है । सन्त कवि जयमल्लजी की रचनाओ मे भी अलकारो का प्रयोग प्रयत्नसाध्य नही हे । वे वाणी के आवेग से स्वत ही इस प्रकार बिखर गये है, जिस प्रकार सागर की थिरकनो से रत्न-राशि बिखर जाती है । उन्होने सादृश्यमूलक अलकारो का प्रयोग ही विशेप रूप से किया हे, उनमे भी उपमा व रूपक ही उन्हे विशेप प्रिय रहे हे। यहाँ शब्दालकार एव अर्थालकार के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हे—

(१) अनुप्रास

व्यञ्जनो की आवृति को अनुप्रास कहते ह । "जयवाणी" मे अनुप्रास अलकार दृष्टव्य ह—

(१) दो अनुमत लेसु दीक्षा,
जाऊ जमारो जीत ।

---

१ साहित्य दपण विश्वनाथ, १०/१

(२) नाटक नाचे नव नवा,
रतन जडित आवास।

(३) बेटा वहु विनय करे रे,
लुल लुल पाये लाग।

(४) नर खापा खाँचा विरला रे।

(२) पुनरुक्ति

जहा एक शब्द की आवृति भाव को रुचिकर वनाने के लिए हो वहाँ पुनरुक्ति अलकार होता है यथा—

(१) लुल लुल ने लटका करे रे।

(२) मै नीठ नीठ व्याव मनायो रे।

(३) जुदा जुदा नाम नगरज भाख्यौ।

(३) उपमा

जहाँ एक वस्तु को दूसरी वस्तु के समान बताया जाये (उपमेय को उपमान के समान वताया जाय)। उपमानो के चुनाव मे कवि वहुत सजग रहा है। उसकी दृष्टि केवल रूढिबद्ध या शास्त्रीय उपमानो पर ही नही रही, लोक जीवन एव लोकमानस से भी उपमानो का चयन किया गया है यथा—

(१) कुगुरू तो कालो नागज सरिखो।

(२) आयु घटती जाये छे जिम अजली नो पाणी रे।

(३) जिम पथी रहे सराय मे जी, रह्यो तिम वासे ही आय रे।

(४) इण-भव पर-भव दु ख हुवे जी, उघडे कडवा सा आक।

(५) पिण परवश पडिया जोर न लागे,
जिम दवी सॉप नी ठोडी रे।

(६) सिकियो तू इण ससार मे, ज्यूँ भडभूजारी भाड।

(७) हिडोला जिम हीचीयो, गोप्या तणो इज नाथो,

(८) झुलक-झुलक माता रोवती, कुवर सामो रही जोय।
ए सुरती जाया ताहरी उवर फूल ज्यूँ होय॥

(९) ओ सोहे जिम सेन्ये गयन्दो, तू सोहे जिम पूनम चन्दो।

(१०) चन्द्र विम्ब ज्यूँ थोर ने भेखधारी गिणन्त।
तेह एकत कूडे मे पड्या, मृग ज्यू दु ख लहन्त।

(४) रूपक

जहाँ उपमेय मे उपमान का अभेद आरोपण हो, वहाँ रूपक अलकार होता है, यथा—

(१) साधु जी उठाया सूरमा रे ज्ञान घोडे असवार ।
कर्म-कटक दल जूझिया रे विलम्ब न कीध लिगार ।।

(२) म्हारे क्षमा-गढ-माय फौजाँ रहसी चढी री माई ।
बारे भेदे तप तणी चोकी खडी ।
बारे भावना नाल चढाऊँ कागरे री माई ।
तोडू आठ कर्म सफल कार्य सरे ।

पहले मे सन्त को शूरवीर का रूप दिया है । वह ज्ञान के घोडे पर सवार है एव तत्परता के साथ कर्म-सैन्यदल का नाश करता है । दूसरे मे क्षमा-गढ मे प्रवेश पाने के लिए बारह-भावना रूपी नाल की चढाई और आठ कर्म रूपी किवाडो को तोडने का वर्णन है । कवि ने दीपावली का आध्यात्मिक रूपक इस प्रकार बाधा है, यथा—

काया रूप करो देहरो, ज्ञान रूपी जिन देव ।
जस महिमा शख झालरी, करो सेवा नितमेव ।।
धीरज मन करो धूपणो, तप अगरज खेव ।
श्रद्धा पुष्प चढायने इम पूजो जिनदेव ।।
दया रूपी दिवलो करो, सवेग रूपणी बाट ।
समगत ज्योत उजवाल मिथ्या अधारो जाय फाट ।।
सवर रूपी करो ढाकणो, ज्ञान रूपियो तेल ।
आठो ही कर्म परजाल ने दो रे अधारो ठेल ।।

इसे यो दर्शाया जा सकता है—

| लौकिक दीवाली | आध्यात्मिक दीवाली |
|---|---|
| काया | देवालय |
| जिनदेव | ज्ञान |
| शख, झालरी | यश, महिमा |
| धूप | धैर्य |
| चन्दन | तप |

| | |
|---|---|
| पुष्प | श्रद्धा |
| दीपक | दया |
| वर्तिका | सवेग |
| ज्योति | सम्यक्त्व |
| अधकार | मिथ्यात्व |
| आवरण | सवर |
| तेल | ज्ञान |
| अधकार भगाना | आठ कर्म जलाना |
| अक्षत | ज्ञान, दर्शन, चारित्र |
| हवेली | काया |
| भाडना | व्रत, प्रत्याख्यान |
| वेल-बूटे | विनयभाव |
| खाजा | क्षमा |
| घृत | वैराग्य |
| धन-पूजन | धर्म-पूजन |
| रूपचौदस को गहने कपडे से लगाव रखना | धर्म से लगाव रखना |
| बही खाते की पूजा | धर्म की पूजा |
| रोली के तिलक के स्थान पर | धर्म का तिलक |
| मकान-शुद्धि | व्रत-शुद्धि |

(५) उत्प्रेक्षा

उपमेय मे जब उपमान की सभावना की जाती है तब उत्प्रेक्षा होती है। कवि ने अपनी रचनाओ मे अनायास ही उत्प्रेक्षाओ का प्रयोग किया है एक उदाहरण दृष्टव्य है—

**वचन कहे छे हो राजाजी आकरा।**
**जाणे पोरस चढियो सूर ॥ सा० ॥**

(६) दृष्टान्त

जहाँ दो वाक्यो मे आये हुए उपमेय तथा उपमान के धर्मों का परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो, वहाँ दृष्टान्त अलकार होता है। कवि ने दृष्टान्त के माध्यम से जनसाधारण को उपदेश दिया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है—

(१) रूधिर नो कोई खरड्यो कपडो, रूधिर सू केम धोइजे रे।
हिसा कर हुवे जीव मेलो वले हिसा धर्म करीजे रे ॥

(२) नाक रीट देखी माखी, चित मे चिते गट के।
पिण पग पॉख लपट जद जावे, मरे शीश पटके ॥

(३) देखी नेण काजल रा भरिया जाणे दल उत्पलका।
कामी देव मारण के ताई काम देव रा भलका ॥

(४) ऊनो पाणी ठार पिण स्वाद वो न रहे।
डोरी तोडी फेर, जोडया गॉठ न मिटे ॥

(७) **उदाहरण**

उदाहरण अलकार वहॉ होता, जहॉ पहले साधारण रूप से कोई वात कह दी जाय ओर फिर उसे समझाने के लिए उसी साधारण के एक अश का निरूपण किया जाय, यथा—

(१) पडतो थे जिम टापरो दीधी थूणी लगाय।
तिम मेघ सयम थी डिग्यो, पिण वीर दिधो सहाय ॥

मेघकुमार के सयम को वनाये रखने के लिए महावीर प्रभु ने सहायता दो। कवि ने यह वताने के लिए गॉव के छप्परो का उदाहरण दिया है। गिरते छप्पर को थूनी लगाकर रोका जाता है।

(२) जिम वजाज काटे कापडो, वाधि माहि दे मेल।
तिम इण देव शरीर मे दीधी ऋद्धि सकेल ॥

(३) मडण पडण विधसण, तिणरी किसडी रे आस।
खिण एक माही रे जासी विगडी, जिम पाणी माहे पतास।

(४) डाभ अणी जल विन्दुओ,
जेहवो सध्या नो वान।
अथिर ज जाणो थारो आऊखो,
जिम पाको पीपल पान ॥

(८) **श्लेषवक्रोक्ति—**

श्लेप वक्रोक्ति मे श्रोता एक वात कहे और सुनने वाला उसका वह अर्थ न करके दूसरा अर्थ लगावे उसे श्लेप-वक्रोक्ति कहते है।

एक उदाहरण द्रष्टव्य हे—

भाटण—"हस्तिशीर्ष" "दुर्दन्त" कहावे,
मरिय मिटे पण भाज न जावे।
द्रोपदी—सूरो हे सग्राम माहे घोडो राले,
खूणे, बैठ रडापो म्हारे कुण घाले।
भाटण—"महिपाल" मथुरा नो वासी,
राग वैरागी ने लील-विलासी।
द्रोपदी—वैरागी तो उरी लेवे दीक्षा,
पछे म्हारी लारे कुण करे रक्षा।

भाटण द्रोपदी के स्वयवर मे विभिन्न राजाओ का नाम ले लेकर द्रोपदी को उनका परिचय देती है, द्रोपदी इन शब्दो का श्लेप से अन्यार्थ लगा लेती हे जिससे अर्थ मे वक्रता आ जाती हे।

(६) अतिशयोक्ति

जिस अलकार मे प्रस्तुत विपय का लोक सीमा से भी अधिक वर्णन किया जाय उसे अतिशयोक्ति अलकार कहते है यथा—

दिन दिन अधिकी ज्योत विराजे,
दर्शन दीठा दारिद्रय भाजे।

इसमे पुनरुक्ति, अनुप्रास एव अतिशयोक्ति तीनो ही अलकारो का एक साथ प्रयोग श्लाघनीय है।

**प्रतीक प्रयोग—**

अन्य सन्त कवियो की भाँति जयमल्लजी ने प्रतीको का विशेप प्रयोग नही किया है। इन्होने अपनी बात सीधी सादी भापा एव शैली मे ही कही है। फिर भी एकाध स्थलो पर सख्यात्मक प्रतीक एव वर्ण प्रतीक का प्रयोग मिलता है।

(क) सख्यात्मक प्रतीक

पाचू मेली रे मोकली, छहु री खबर न काय।
साता सेती रे लग रह्यो पडियो आठ मद माय॥

यहाँ पाँच से तात्पर्य पाँच इन्द्रियो (श्रवणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय एव स्पर्शनेन्द्रिय) से, छ का तात्पर्य छ काय (पृथ्वीकाय, अपकाय,

तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय एव त्रसकाय) से, सात से तात्पर्य सात व्यसनो (जुआ, मास, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी और परस्त्रीगमन) से, तथा आठका तात्पर्य आठ मद (जातिमद, कुलमद, बलमद, श्रुतमद, ऐश्वर्यमद, रूपमद, तपमद एव लब्धिमद) से है।

(ख) वर्ण प्रतीक—

प-पा सू परिचय घणो, ह-वो रहे रे हजूर ।
ल-ले लिव लागी रही, द-दो दिल सूँ दूर ।।

यहाँ 'प' पाप का, 'ह' हिसा का, 'ल' ललना का एव 'द' दया का प्रतीक है।

## शैली-विधान

"काव्य को उसकी शैली ही रोचक बनाती है। शैली की प्राजलता और प्रवाहात्मकता के कारण ही काव्य मे उत्सुकता, सम्बद्धता एव सुबोधता रहती है। टी० ई० हुमे का कथन है कि शैली कलाकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होने के साथ ही पाठक को मोहित करने का साधन भी है।" पोप के अनुसार, "शैली विचारो का परिधान है। शैली व्यक्तित्व का सूचक है। आई० ए० रिचार्ड्स का मत है कि "शैली स्वय कवि अथवा लेखक है।" इन परिभाषाओ से दो बाते स्पष्ट होती है—

(१) शैली से कवि का व्यक्तित्व स्पष्ट होता है।
(२) शैली काव्य का आवश्यक तत्व है।

रचना के भाव कितने ही उदात्त, विराट, गम्भीर तथा मौलिक क्यो न हो यदि उनको प्रस्तुत करने का ढग सुन्दर तथा प्रभावकारी नही है तो उनकी कोई उपादेयता नही है। हमारे आलोच्य कवि ने भी अपने विचारो को सामान्य जन तक प्रभावकारी तरीके मे पहुँचाने के लिए भिन्न-भिन्न शैलियो का सहारा लिया है, उसमे से प्रमुख शैलियाँ इस प्रकार है—

(१) प्रश्नोत्तर शैली
(२) वर्णनात्मक शैली
(३) दृष्टान्त एव उदाहरण शैली
(४) सम्बोधन शैली

एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

**भाटण—"हस्तिशीर्ष" "दुर्दन्त" कहावे,**
**मरिय मिटे पण भाज न जावे।**

**द्रोपदी—सूरो है सग्राम माहे घोडो राले,**
**खूणे, बैठ रडापो म्हारे कुण घाले।**

**भाटण—"महिपाल" मथुरा नो वासी,**
**राग वैरागी ने लील-विलासी।**

**द्रोपदी—वैरागी तो उरी लेवे दीक्षा,**
**पछे म्हारी लारे कुण करे रक्षा।**

भाटण द्रोपदी के स्वयवर मे विभिन्न राजाओ का नाम ले लेकर द्रोपदी को उनका परिचय देती है, द्रोपदी इन शब्दो का श्लेप से अन्यार्थ लगा लेती है जिससे अर्थ मे वक्रता आ जाती है।

(९) अतिशयोक्ति

जिस अलकार मे प्रस्तुत विपय का लोक सीमा से भी अधिक वर्णन किया जाय उसे अतिशयोक्ति अलकार कहते है यथा—

**दिन दिन अधिकी ज्योत विराजे,**
**दर्शन दीठा दारिद्रय भाजे।**

इसमे पुनरुक्ति, अनुप्रास एव अतिशयोक्ति तीनो ही अलकारो का एक साथ प्रयोग श्लाघनीय है।

**प्रतीक प्रयोग—**

अन्य सन्त कवियो की भाँति जयमल्लजी ने प्रतीको का विशेप प्रयोग नही किया है। इन्होने अपनी बात सीधी सादी भापा एव शैली मे ही कही है। फिर भी एकाध स्थलो पर सख्यात्मक प्रतीक एव वर्ण प्रतीक का प्रयोग मिलता है।

(क) सख्यात्मक प्रतीक

**पाचू मेली रे मोकली, छहु री खबर न काय।**
**साता सेती रे लग रह्यो पडियो आठ मद माय॥**

यहाँ पाँच से तात्पर्य पाँच इन्द्रियो (श्रवणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय एव स्पर्शनेन्द्रिय) से, छ का तात्पर्य छ काय (पृथ्वीकाय, अपकाय,

तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय एव त्रसकाय) से, सात से तात्पर्य सात व्यसनो (जुआ, मास, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी और परस्त्रीगमन) से, तथा आठका तात्पर्य आठ मद (जातिमद, कुलमद, बलमद, श्रुतमद, ऐश्वर्यमद, रूपमद, तपमद एव लब्धिमद) से है।

(ख) वर्ण प्रतीक—

प-पा सू परिचय घणो, ह-वो रहे रे हजूर।
ल-ले लिव लागी रही, द-दो दिल सूँ दूर॥

यहाँ 'प' पाप का, 'ह' हिंसा का, 'ल' ललना का एव 'द' दया का प्रतीक है।

## शैली-विधान

"काव्य को उसकी शैली ही रोचक बनाती है। शैली की प्राजलता और प्रवाहात्मकता के कारण ही काव्य मे उत्सुकता, सम्बद्धता एव सुबोधता रहती है। टी० ई० हुमे का कथन है कि शैली कलाकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होने के साथ ही पाठक को मोहित करने का साधन भी है।" पोप के अनुसार, "शैली विचारो का परिधान है। शैली व्यक्तित्व का सूचक है। आई० ए० रिचार्ड्स का मत है कि "शैली स्वय कवि अथवा लेखक है।" इन परिभाषाओ से दो बाते स्पष्ट होती है—

(१) शैली से कवि का व्यक्तित्व स्पष्ट होता है।
(२) शैली काव्य का आवश्यक तत्व है।

रचना के भाव कितने ही उदात्त, विराट, गम्भीर तथा मौलिक क्यो न हो यदि उनको प्रस्तुत करने का ढग सुन्दर तथा प्रभावकारी नही है तो उनकी कोई उपादेयता नही है। हमारे आलोच्य कवि ने भी अपने विचारो को सामान्य जन तक प्रभावकारी तरीके से पहुँचाने के लिए भिन्न-भिन्न शैलियो का सहारा लिया है, उनमे से प्रमुख शैलियाँ इस प्रकार है—

(१) प्रश्नोत्तर शैली
(२) वर्णनात्मक शैली
(३) दृष्टान्त एव उदाहरण शैली
(४) सम्बोधन शैली

(१) प्रश्नोत्तर शैली

प्रश्नोत्तर शैली मे दो प्रमुख पक्ष होते है—एक प्रश्नकर्ता एव दूसरा उत्तर-दाता। उत्तरदाता के उत्तर मे ही अगला प्रश्न उठ खडा होता है, इस प्रकार विचार क्रम आगे बढता जाता है। जयमल्लजी ने इस शैली का प्रयोग बहुतायत से किया है। प्राय राजा, तीर्थंकर या साधु से अपने पूर्व जन्म के बारे मे प्रश्न करते है एव ये तीर्थकर या साधु समाधान प्रस्तुत करते है। 'राजा प्रदेशी" की कथा प्रश्नोत्तर शैली का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। "सती द्रोपदी" मे भाटीणी, एक-एक राजकुमार का परिचय द्रौपदी से कराती है और पूछती है कि क्या इससे विवाह स्वीकार है? द्रोपदी उसका वक्रतापूर्ण उत्तर देती चलती है। भगवान महावीर से किये गये गौतम स्वामी के प्रश्न भी बहुत प्रसिद्ध है। चन्द्रगुप्त राजा भी अपने १६ स्वप्नो के बारे मे प्रश्न करते है और भद्रबाहु उनका समाधान प्रस्तुत करते है। "राजा प्रदेशी" रचना से प्रश्नोत्तर शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

केशी— जाणे छे राय! तू बात रा ए,<br>
आचार्य कितरी जात रा ए।

राजा— जाणू छू स्वामी नाथ ए,<br>
आचार्य की तीन जात ए।

केशी— गुरु बोल्या राय! जाणे इसी ए,<br>
तीनो की जात किसी किसी ए॥

राजा— कला, शिल्प, धर्म, आयरिया ए,<br>
तीनो रा नाम मे धारिया ए॥

केशी— गुरु कहे राय! जाणे इसी ए,<br>
यारी सेवा भक्ति करवी किसी ए॥

राजा— जाणू स्वामी! धुर बेहु तणी ए,<br>
कला शिल्प आयरिया भणी ए॥

(२) वर्णनात्मक शैली

अपने काव्य मे कवि की वर्णन प्रवृत्ति विशेष रूप से रही है। छोटी सी घटना को भी वर्णन के द्वारा विस्तार प्रदान किया गया है। चरित्र प्रधान

रचनाओ के अध्ययन मे इन वर्णनो के सम्बन्ध मे यथा प्रसग विचार किया गया है[1]।

### (३) दृष्टान्त एव उदाहरण शैली

किसी भी गूढ बात को स्पष्ट करने के लिए कोई न कोई उदाहरण देना आवश्यक होता है। इससे बात अधिक स्पष्ट व प्रभावपूर्ण वन जाती है। आलोच्य कवि ने इस शैली का प्रयोग उपदेश प्रधान रचनाओ मे अधिक किया है। जीव के आवागमन के चक्कर को गेद का व तेल मे पक रहे वडे का उदाहरण देकर समझाया है। क्रोधी मनुष्य की प्रकृति का वणन ऐसे व्यक्ति का उदाहरण देकर किया है जिसकी आँख मे मिर्च लग गई हो। समाज से लिए गये उदाहरण जन सामान्य मे अधिक मान्य होते है। इस शैली के एकाध उदाहरण द्रष्टव्य है—

जुवती रच्यो इण मडल जग मे मोटो जाल।
कामी-मिरग मारण के ताई, मूढ मरे दे फाल॥
नाकरीट देखी माखी, चित्त मे चिन्ते गट के।
पिण पग पाख लपट जद जावे, मरे शोप पटके॥
केसर वरणी कोमल काया, मूढ करे मन हूस।
ए पिण जहर हलाहल जाणो, जैसो थली री तूस॥
देखी नैण काल रा भरिया, जाणे दल उत्पल का।
कामी देव मारण के ताई कामदेव रा मलका॥

### (४) सम्वोधन शैली

सम्वोधन शैली मे भी दो पक्ष होते है। एक तो सम्वोधन करने वाला एव दूसरा जिसको सम्वोधन किया जाय। कवि ने अनेक स्थलो पर सम्वोधित करके वात कहलवाई है यथा—सुवाहु की रिद्धि के वारे मे महावीर स्वामी गौतम स्वामी को सम्वोधित करके वताते है

(१) इम निश्चय गौतम सुणो वीर जिणद कहे वाय।
सुवाहु ने इसी रिद्ध, उदय हुई छे आय॥
(२) वीर कहे सुण गोयमा! भय नही हो पर चक्रनो कोय।
तिहा "सुमुख" गायापति ए हुतो रिद्धिवन्तो सोय॥

अधिकतर गौतम को सम्वोधित करके ही वाते कही गई है।

---

१ देखिये पृ० ८९-९६

## छन्द विधान

सन्त कवि प्रवचन देते समय अपनी रचनाओ को प्राय गा-गाकर सुनाया करते हे। गाने व सुनाने के उद्देश्य से लिखे जाने के कारण इनमे सगीत तत्व की प्रधानता रही है, अत छन्द-शास्त्र के नियमो का ठीक-ठीक पालन इनकी रचनाओ मे प्राय नही हो पाता। लय की ओर विशेप रुझान होने के कारण इन कवियो का ढालो एव रागो की ओर ही अधिक ध्यान रहा है। जयमल्ल जी भी इसके अपवाद नही है। इन्होने दोहे, सोरठे आदि मात्रिक छन्दो का ही विशेप प्रयोग किया हे। विभिन्न ढालो के बीच-बीच मे इनके प्रयोग से कथा-सूत्र मे सयोजना आ गई हे।

मूलत ये रचनाएँ गाने के उद्देश्य से ही लिखी गई है अत 'रे' 'जी' आदि लगाकर तथा अन्तिम वर्ण को दीर्घकर दोहा सोरठा जैसे छन्दो को भी गेययुक्त बनाने का प्रयत्न सर्वत्र लक्षित होता हे यथा—

**राजगृही नगरी माले बसे सुदर्शन सेठो रे॥**
**ऋद्धि दान करि दीपतो घणा जणा उण हेठो रे॥**

इस उदाहरण मे सेठ व हेठ को **'सेठोरे'** और **'हेठोरे'** करने के पीछे दोहे को लययुक्त बनाने की ही प्रवृत्ति प्रमुख रही हे।

चरितपरक रचनाएँ कई ढालो मे विभक्त की गई है। प्रत्येक ढाल के पूर्व उसमे प्रयुक्त राग एव तत्सम्बन्धी तर्ज का निर्देश भी कर दिया गया है। इन ढालो मे प्रयुक्त कुछ रागो के नाम इस प्रकार हे—

(१) फाग
(२) सोरठी
(३) चन्द्रायण
(४) मारू
(५) चतुष्पदी
(६) जतनी एव
(७) धमाल

ये जिन तर्जो मे लिखी गई हे उनमे से कुछ के नाम ये है—

(१) कागदियो लिख भेजुँ हो सगु को नही

(२) कोयलो पर्वत धुँधलो रे लाल

(३) ढोला रामत ने परी छोडने

(४) सामी म्हारा राजा ने धरम सुणावजो ।

(५) गज घोडा देख भुलाणो रे ।

(६) प्राणी कब ठाकुर फुरमायो रे ।

(७) दुनिया मे बहुत दगाई रे

(८) कलजुग रो लोक ढगारो रे

(९) प्राणी किम कर साहिब रीझे रे

(१०) प्राणी-ए जग सपनो लाधो रे

(११) चेतो रे मिनख जमारो पायो रे

(१२) जीवडला दुलहो मानव भव काई रे तू हारे

(१३) पुण्य रा फल जोवज्यो कायर मत होयज्यो रे

(१४) जीवा तू तो भोलो रे प्राणी इम रुलियो ससार

(१५) रग महल मे हो चौपड खेले

(१६) चितोडी रा राजा रे

(१७) वीर सुणो मोरी विनती

(१८) भूलो मन भवरा कई भम्यो ।

(१९) आवो काल लेपेटो लेता रे

(२०) कपूर हवे अति ऊजलो रे

(२१) रुक्मण तूं तो सेणी श्राविका

(२२) मोरा प्रीतम ते किम कायर होय

(२३) जगत गुरु त्रिशला नन्दन वीर

(२४) जी हो मिथिलापुरी नो राजियो

(२५) सहेल्या ए आवो मोरिया

(२६) नदी जमुना के तीर उडै दोय पखिया ।

जब कवि स्वय अपने व्याख्यानो मे इन रचनाओ को गा-गाकर सुनाते थे, तब जनता भाव-विभोर हो उठती थी और एक निराला ही समा बध जाता था ।

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि कवि का ध्यान भावो की गहराई की ओर अधिक था, ऊपरी सजावट एव बनावट की ओर कम। यह सही भी है कि जब भाव सच्चे हो तो उन्हे बनाने-सवारने की आवश्यकता नही रहती। चमत्कारवादी कवियो के समान ये उत्प्रेक्षाओ एव उपमाओ को ढूंढ-ढाढ कर उनकी झडी-सी नही लगाते। सहज रूप मे लोकजीवन से जो उपमान मिल जाते ह उन्ही का प्रयोग कर ये अपने काव्य को सरस बनाते हैं। इनकी कविता मे हमे न तो "भूपण विना न बिराजई, कविता वनिता मित्र" के सिद्धान्त का पालन और न ही छन्दो का वैविध्य मिलता है। ये सच्चे अनुभूति के कवि थे और यही बात इनकी अभिव्यक्ति मे भी प्रतिविम्बित है।

●

# दार्शनिक विचारधारा

चतुर्थ अध्याय
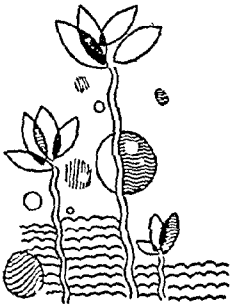
# दार्शनिक विचारधारा

मनुष्य अपने आस-पास अनेक प्रकार के पदार्थ देखता है। वह ससार के बीच अपने को अकेला नही पाता, अपितु अन्य पदार्थों से घिरा हुआ अनुभव करता है। वह यह समझता है कि मेरा ससार के सब पदार्थों से कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य है। किसी न किसी रूप मे मै सारे जगत् से बधा हुआ हूँ। जिस समय मनुष्य इस सम्बन्ध को समझने का प्रयत्न करता है, उस समय उसका विवेक जाग्रत हो जाता है, उसकी बुद्धि अपना कार्य सभाल लेती है, उसकी चिन्तन-शक्ति उसकी सेवा मे लग जाती है। इसी का नाम दर्शन है। दूसरे शब्दो मे दर्शन जीवन एव जगत् को समझने का एक प्रयत्न है। दार्शनिक जीवन एव जगत् को खण्डश देखता है, क्योकि दोनो की अखण्ड सत्ता होती है, जिसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक कार्य पर पडता है। जीवन व जगत् के इस सम्बन्ध को समझना ही दर्शन है।[1]

हिन्दी साहित्य दर्शन के ही क्रोड मे पला है। भक्ति-काल मे यह दर्शन द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि मे विभक्त हो गया। आधुनिककाल मे भी कवि दर्शन से मुक्त होकर नही चले। वे मार्क्सवाद, फ्रायडवाद, गाँधीवाद, अस्तित्ववाद आदि विभिन्न विचारधाराओ से प्रभावित रहे हे।

हिन्दी का सन्त काव्य वैदिक दर्शन और श्रमण-दर्शन से अधिक प्रभावित रहा है। जैन सन्त कवियो की रचनाओ का मूलाधार तो जैनदर्शन ही रहा है। इसीलिए अनेक विद्वानो ने तो जैन साहित्य को दर्शन साहित्य तक भी कह दिया हे, किन्तु यह स्मरणीय हे कि उसमे पारिभाषिक दर्शन की सी शुष्कता नही हे। जन दर्शन जीवन दर्शन हे। वह व्यर्थ के काल्पनिक आदर्शों के गगन की उडान नही वरन् पग-पग पर जीवन के प्रत्येक व्यवहार मे ढलने की वस्तु हे। हमारे आलोच्य कवि जयमल्लजी का साहित्य रचने का मुख्य उद्देश्य भी व्यावहारिकता का उपदेश देना ही है किन्तु अनेक स्थानो पर वे गम्भीर

---

१ डा० मोहनलाल मेहता जैन दर्शन, पृ० १२

आलोच्य कवि ने ऐसे परमात्माओ की स्तुति बार-बार की है। यह ईश्वर जगत्कर्ता भी नही है। यह साधारण मानवो के समान सद्कार्य करता हुआ धीरे-धीरे परमात्मा की श्रेणी मे आ जाता है। आठ कर्मों को नष्ट करके जो सिद्धि प्राप्त कर लेता है वह सिद्ध कहलाता है। ये सिद्ध अनेक हो सकते है—

**अनन्त सिद्ध तो मुक्ति पहोन्ता,**
**अनन्त जासी बहु जायजी।**

जैन धर्म मे ये सभी सिद्ध परमात्मा होते है। ये सिद्ध जन्म-मरण, रोग-शोक आदि से मुक्त होते है—

**जन्म मरण ने रोग शोक नही, नही गुण ठाणो जोग जी।**
**केवलज्ञान ने केवल दर्शन, केवल दोय उपयोग जी ॥[१]**

इस परमात्मा का रूप निराकार एव निरजनकारी है—

**ज्योति स्वरूपी ज्योति विराजे, निरजन निराकार जी।**
**ऐसी वस्तु नही कोई दूजी, तीन लोक मे सार जी ॥[२]**

और यदि सुख-शान्ति चाहते हो तो बार-बार ऐसे सिद्धो को नमस्कार करो—

**बीजो मगल सिद्धो ने सहु वादो बारम्बार जी।**
**ऐसी स्तुति कहे ऋषि "जयमल्ल" जौ चाहो सुख सार जी ॥[३]**

अवतारवाद की कल्पना यहाँ स्वीकार्य नही है।

जगत—

जयमल्लजी ने अन्य सन्तो की भाँति जगत की असारता का वर्णन किया है। उनकी दृष्टि मे यह ससार ईश्वर की सृष्टि नही है। यह अनादि अनन्त है। मानव इस जगत के झूंठे प्रपचो मे फस जाता है, इससे उसका उद्धार नही हो सकता। ससार एक मृग-मरीचिका है। माता-पिता भाई, प्रिया सभी काल के सम्मुख कुछ नही कर सकते—

---

१ जयवाणी, पृ० २८
२ वही
३ वही—पृ २८

विचार एव दशन के तत्वो की अभिव्यक्ति भी कर बैठे ह। कवि की इस विचारधारा का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षको मे कर सकते है —

**आत्मा—**

आत्मा सदा अमर रहती हे। यह नारकी, पशु, मनुष्य एव देवगतियो मे नाना रूप पाकर भी कभी अपने अमर स्वरूप से भ्रष्ट नही होती। जैन दर्शन मे आत्मा को ज्ञानरूप कहा गया हे। आत्मा ही जीव है जो चेतन हे। आत्माओ के दो भेद हैं—ससारी और सिद्ध।[1] जयमल्लजी ने आत्मा के इन दोनो भेदो का अनेक स्थलो पर उल्लेख किया है। सिद्ध आत्मा मे कर्म-फल नही रहता। सिद्ध "आठो ही कर्म खपाय के, कीधो भवनो अन्त" एव मोक्ष के भागी बनते है। ससारी आत्मा, आध्यात्मिक जीवन का विकास करते-करते अन्त मे राग-द्वेष से सर्वथा रहित होकर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी परमात्मा हो सकती है। आत्मा इस ससार मे अनादिकाल से कर्म मल से मलिन है और चार गतियो मे परिभ्रमण करती है। वह ज्ञान, दर्शन एव चारित्र को आराधना कर कर्मों को नष्ट करती हे और तभी वह शुद्ध निर्मल बन सकती है। "जीवा बयालिसी" मे कवि ने बताया है कि यह ससारी आत्मा अनेक कष्ट भोगती है। अनेक योनियो मे भटकता हुआ यह प्राणी अनेक कष्टो को भोगता है। इसीलिए कवि तप, जप, सयम आदि का पालन करने की प्रेरणा देता है ताकि यह ससारी आत्मा कम से कम अन्तरात्मा की श्रेणी मे तो पहुँच सके।

**परमात्मा—**

परमात्मा का जैनेतर अर्थ ३३ करोड देवताओ मे से किसी भी एक से हो सकता है। वह ही दूसरे शब्दो मे भगवान माना जाता है। किन्तु जैन दर्शन मे परमात्मा का अर्थ शुद्ध आत्मा है। राग-द्वेष को नष्ट करने के बाद ही आत्मा शुद्ध होती हे। जैन धर्म, क्रोधी मानी, मायावी और लोभी ससारी देवताओ को अपना इष्टदेव नही मानता। भला जो स्वय काम, क्रोध आदि के विकारो मे फँसे पडे है वे दूसरो को विकारो से दूर करने के लिये क्या आदश हो सकते ह ? इसलिए जैन दर्शन मे सच्चे देव या भगवान वे ही माने गये हे जो राग-द्वेप को जीतने वाले हो, कर्मरूपी शत्रुओ को नष्ट करने वाले हो, तीन लोक के पूजनीय हो, केवल ज्ञान के धारक हो, परम शुद्ध आत्मा हो।

---

१ द्वितीय मगल मे सिद्ध आत्माओ का वर्णन किया हैं

—जयवाणी पृ० २७-२८

आलोच्य कवि ने ऐसे परमात्माओ की स्तुति बार-बार की है। यह ईश्वर जगत्कर्ता भी नही है। यह साधारण मानवो के समान सद्कार्य करता हुआ धीरे-धीरे परमात्मा की श्रेणी मे आ जाता है। आठ कर्मों को नष्ट करके जो सिद्धि प्राप्त कर लेता है वह सिद्ध कहलाता है। ये सिद्ध अनेक हो सकते है—

**अनन्त सिद्ध तो मुक्ति पहोन्ता,**
**अनन्त जासी बहु जायजी।**

जैन धर्म मे ये सभी सिद्ध परमात्मा होते है। ये सिद्ध जन्म-मरण, रोग-शोक आदि से मुक्त होते है—

**जन्म मरण ने रोग शोक नही, नहीं गुण ठाणो जोग जी।**
**केवलज्ञान ने केवल दर्शन, केवल दोय उपयोग जी॥**[1]

इस परमात्मा का रूप निराकार एव निरजनकारी है—

**ज्योति स्वरूपी ज्योति विराजे, निरजन निराकार जी।**
**ऐसी वस्तु नही कोई दूजी, तीन लोक मे सार जी॥**[2]

और यदि सुख-शान्ति चाहते हो तो बार-बार ऐसे सिद्धो को नमस्कार करो—

**बीजो मगल सिद्धो ने सहुँ वादो बारम्बार जी।**
**ऐसी स्तुति कहे ऋषि "जयमल्ल" जो चाहो सुख सार जी॥**[3]

अवतारवाद की कल्पना यहाँ स्वीकार्य नही है।

**जगत—**

जयमल्लजी ने अन्य सन्तो की भाँति जगत की असारता का वर्णन किया है। उनकी दृष्टि मे यह ससार ईश्वर की सृष्टि नही है। यह अनादि अनन्त है। मानव इस जगत के झूठे प्रपचो मे फस जाता है, इससे उसका उद्धार नही हो सकता। ससार एक मृग-मरीचिका है। माता-पिता भाई, प्रिया सभी काल के सम्मुख कुछ नही कर सकते—

---

१ जयवाणी, पृ० २८
२ वही
३ वही—पृ २८

सगा सनेही बेटा पोतरा, काका बाप ने माय ।
बधव त्रिया रे देखता रहे, जब काल झपट ले जाय ॥[१]

इस ससार मे जीवन सध्या की लालिमा, डाभ की नोक पर स्थित ओस की बूद तथा पीपल के पत्ते के समान अस्थिर एव क्षणभगुर है—

डाभ अणी जल बिन्दुओ, जेह्वो सध्या नो वान ।
अथिर ज जाणो रे थारो आउखो, जिम पाको पीपल पात ॥[२]

कवि ने इस ससार को सराय भी बताया है । इस अस्थिर जगत से मोह रखना उचित नही । कनक एव कामिनी को कवि ने फन्दा बताया है जिसमे फँसकर मानव बुरी गति पाता है—अर्थात् इससे मुक्ति मे बाधा पहुँचती है—

एक कनक दूजी कामणी, फन्द कह्या जिन राज रे ।
इण फन्द मे फसिया रहे, ते मरने दुर्गति जाय रे ॥ जीवत ॥[3]

कबीर ने भी कामिनी को तीनो लोको मे नाग के समान विषैला बताया है —

कामणि काली नागणी, तीन्यू लोक मझारि ।
राम सनेही ऊबरे, विषई खाये झारि ॥[४]

कवि ने इस ससार को भडभूजे का भाड बताया है—'सिकियो तू इण ससार मे, ज्यू भडभूजारी भाड ।' अत जगत के इन बाह्याडम्बरो को छोड़-कर व्यक्ति को आन्तरिक शुद्धि की ओर अग्रसर होना चाहिए । बाह्य-शुद्धि से कुछ नही होता यदि आत्मा मे अज्ञान रूपी मैल भरा है—

बाह्य शुचि बहुली करी, माय तो मेल अज्ञान ॥

यदि कोई प्रत्यक्ष मे मीठे वचन बोलता है और मन मे कपटता रखता है तो यह ठीक नही—

मुडे तो बहु मीठा बोले, मन राखे कपटाई रे ।[५]

---

१ वही—पृ० १४०
२ जयवाणी, प० १४०
३ वही—१५४
४ कबीर ग्रथावली
५ जयवाणी—११७

**साधना—**

चारित्र की शुद्धि के लिए साधना के अनेक उपकरणो की आवश्यकता होती है। जैन-धर्म मे माना गया है कि शरीर को कष्ट देकर ही आत्मा की आध्यात्मिक उन्नति सम्भव है। इस भव-सागर को पार करने के लिए सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान एव सम्यक् चारित्र इन तीनो रत्नो को प्राप्त करना परमावश्यक है। इन्हे प्राप्त करने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। यह गुरु जिन भगवान द्वारा प्ररूपित शास्त्रो मे बताये हुए आदर्श मार्ग पर चलकर अपने विशुद्ध आचरण तथा ज्ञान से अभीष्ट आदर्श (सासारिक बन्धनो से मुक्ति) को प्राप्त करना चाहता है और दूसरो को भी तदर्थ मार्ग प्रदर्शित करता है। ये गुरु पच महाव्रत, पच आचार, पाँच समिति, तीन गुप्ति आदि का पालन करते है—

**पाँच महाव्रत पालवे जी, पाले है पचाचार।**
**पाँच समिति समिता रहे जी तीनो ही गुप्ति दयाल ॥[1]**

ये गुरु-रूप साधु कमल के समान ससार मे रहते हुए भी उससे निर्लिप्त रहते है—

**सदा हो काल ऊँचो रहे जी कमल नो फूल जल माहि।**
**तिम साधु ऊँचा रहे जी लिप्त ससार मे नाहि ॥[2]**

साधु के अलावा जैनधर्म मे श्रावक धर्म की भी व्यवस्था की गई है। यदि व्यक्ति साधु धर्म अगीकार कर सके तो ठीक, अन्यथा उसे श्रावक धर्म तो स्वीकार करना ही चाहिए—"ले सके तो ले साधु पणो, नहितर श्रावक-व्रत धर्म।" श्रावक के छ दैनिक कर्म[3] बताये गये है और बारह व्रत[4]।

---

१ जयवाणी—२६
२ वही—३१
३ (१) देव भक्ति (२) गुरु सेवा
(३) स्वाध्याय (४) सयम
(५) तप (६) दान

जैनागमो मे श्रावक धर्म आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज
—जिनवाणी श्रावक धर्म विशेषाक—६-८

४ (१) स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत (२) स्थूल मृषावाद विरमणव्रत

वैदिक परम्परा मे जेमे गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थ का विधान है। जैन परम्परा मे ऐसा ही व्रती जीवन के वाद पडिमाधारी साधना का उल्लेख है। यह श्रावक-जीवन की उत्कृष्ट साधना है।

साधना काल मे अनेक तत्व वाधा उत्पन्न करते है। मानव चार कपाय— क्रोध, मान, माया, एव लोभ मे लिप्त रहता हे। यही नही अन्य व्यक्ति को धम करते देखकर उसमे भी वाधा उत्पन्न करता है—

**क्रोध, मान, माया लोभ मे छकियो तू अन्याय।**
**साधु श्रावक देखि वलतो, देतो धर्म अन्तराय॥**[1]

अत मुक्ति द्वार की ओर अग्रसर होने के लिए पॉच इन्द्रियो को वश मे करना आवश्यक है—

**राग द्वेष झट थूक दो, छोडो विषय कषाय।**
**पॉच इन्द्रियाँ वश करो, जिम मुगत विराजो जाय॥**[2]

मोह रूपी अग्नि मे गिरने के वाद सुख की आशा व्यर्थ है। अत दया-धर्म से लगाव रखना चाहिए—

**मोहनी जाल माहे पड्याजी, सुख नही लवलेस।**
**इम जाणी तुम प्राणियाजी, राख दया-धर्म रेस॥**[3]

इस ससार से निवृत्ति पाकर व्रत-उपवास आदि तप करना चाहिए अन्यथा काम एव भोग तो इस भव मे भी और अगले भव मे भी कष्टदायक है—

---

(३) स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत (४) स्वदारसन्तोष परदार विवर्जन व्रत
(५) इच्छा परिमाण व्रत (६) दिग्व्रत
(७) उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत (८) अनर्थ दण्ड विरमण व्रत
(९) सामायिक व्रत (१०) देशावकाशिक व्रत
(११) पौषधोपवास व्रत (१२) अतिथि सविभाग व्रत

—वही—९ १२

१ जयवाणी—१५०
२ वही—१५१
३ जयवाणी—१२७

**काम न भोग नरनार ना जी, जाणे छे फल किंपाक।**
**इण भव पर भव दुख हुवे जी, उघडे कडवा सा आक ॥[1]**

मोह-मिथ्यात्व को त्याग कर मन का भ्रम हटाने से मानव मुक्ति-पथ-गामी बन सकता है। इसीलिए जयमल्लजी जीव को चेतावनी देते हुए कहते है—

**जीवा चेतो रे, वासो वसियो आय,**
**जीव वटाऊ पावणोजी, जीवा चेतो रे।**
**जीवा चेतो रे, चट दे जीव चल जाय,**
**साथ न हुवे केहनो, जीवा, चेतो रे ॥[2]**

अत इस दुर्लभ मानव भव को धर्म करके ही व्यतीत करना चाहिए। आत्मा की निर्मलता के लिए, सामायिक, पोषध, प्रतिक्रमण आदि करते रहना चाहिए।

**सामायिक पोषह कर, वले पडिकमणो विशेषो रे।**

मन मे कोई शल्य नही रखना चाहिए। इससे भी मुक्ति-पथ उजागर होता है—

**प्रायश्चित दस प्रकार ना, लेई ने शल्य काढीजे रे।**

पर-भव से डरने वाला मानव आत्म दोष का परित्याग कर देता है। व्रत पचक्खाण मे यदि कोई भी दोष लग जाता है तो वह चतुर सुगुरु के पास आलोचना करता है और शुद्ध होकर मोक्ष-मार्ग का पथिक बनता है।

जैन-साधना का चरम लक्ष्य निर्वाण-प्राप्ति है। इस ससार से वैराग्य होने के बाद साधना की विभिन्न सीढियो को पार करता हुआ जीव अन्त मे निर्वाण प्राप्त करता है। इससे आवागमन के चक्कर से मुक्ति हो जाती है। उसके सभी कर्म नष्ट हो जाते है। यह सब एक ही भव मे प्राय सम्भव नही। अनेक भवो की तपस्या एव साधना के परिणामस्वरूप ही मुक्ति सम्भव हो पाती है। स्वय भगवान महावीर स्वामी को भी सत्ताईस भव के बाद निर्वाण-

---

१ वही—१२८
२ वही—१२२

प्राप्ति हुई थी। यह साधना हठयोग आदि के समान कठिन नही है, अपितु सर्वजन करणीय एव ग्रहणीय है।

**पुनर्जन्म एव कर्मवाद—**

दार्शनिक वादो की दुनिया मे कर्मवाद भी अपना एक विशिष्ट महत्व रखता है। जैन-धर्म की सैद्धान्तिक विचारधारा मे तो कर्मवाद का अपना एक विशेप स्थान रहा हे वल्कि यह कहना भी अत्युक्तिपूर्ण नही होगा कि कर्मवाद के मर्म को समझे बिना जैन सस्कृति एव जैन-धर्म का यथार्थ ज्ञान हो ही नही सकता। जैन-धम तथा जैन सस्कृति का भव्य प्रासाद कर्मवाद की गहरी नीव पर ही टिका हुआ है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी कर्मवाद के सिद्धान्त पर ही आधारित है।

कर्मवाद की धारणा है कि ससारी आत्माओ की सुख-दु ख, सम्पत्ति-विपत्ति और ऊँच-नीच आदि जितनी भी विभिन्न अवस्थाएँ दृष्टिगोचर होती है, उन सभी मे काल एव स्वभाव आदि की तरह कर्म भी एक प्रवल कारण है। जयमल्लजी कहते हे कि यदि एक व्यक्ति पालकी पर जाता है एव दूसरा व्यक्ति नगे पॉव जाता है तो यह उसके पूर्व जन्म के कर्मो का परिणाम है। कई ऐसे उदाहरण देकर कवि ने इस बात को स्पष्ट किया —

एक चढे छै पालखी रे, वोहला चाले छै जी लार।
एकण रे सिर पोटली जी, पगा नही पेजार रे।
रे प्राणी पाप पुण्य फल जोय॥
एकण ने तुस ढोकला जी, पूरा पेट न थाय।
एकण रे रहे लाडवाजी, वैठा भाणे के माय।[1]

और अन्त मे इन सव अवस्थाओ मे कर्म को ही प्रवल कारण माना है। कर्म के भोग मे किसी की भी कृपा सहायक नही—

**पाप करणी सु दुख पडे जी, धरम करणी सु सुख।**
**करे जिसा फल भोगवे जी, रहे न किण री रुख॥[2]**

इस प्रकार जैन दर्शन जीवो की इन विभिन्न परिणतियो मे ईश्वर को कारण न मानकर कर्म को ही कारण मानता है। कोई ईश्वर मानव द्वारा

---

१ जयवाणी, पृ० १००
२ वही, पृ० १०१

किये गये कार्यो का हिसाब नही रखता है, वरन् आनेवाले भव की मानव की योनि इन कर्मो के आधार पर ही निश्चित होती है। यह मानव जन्म पूर्व जन्म के कर्मों के सुफल का ही परिणाम है—

**एकर मिनख जमारो पायो,**
**पूरब जोग कमायो रे।[1]**

इन कर्मों को भोगने के लिए ही पुनर्जन्म होता है। यद्यपि न्याय-वेदान्त आदि वैदिक दर्शनो तथा उत्तर-कालीन पौराणिक ग्रन्थो मे ईश्वर को सृष्टि का कर्ता और कर्म-फल दाता माना गया है, परन्तु जैन-दशन सृष्टि कर्ता और कर्म फल दाता के रूप मे ईश्वर की कल्पना ही नही करता। जैन-धर्म का कहना है कि जीव जैसे कर्म करने मे स्वतन्त्र है, वैसे ही उसके फल भोगने मे भी स्वतन्त्र है। यह आत्मा स्वय ही कर्म को करने वाली है और स्वय ही ससार मे परिभ्रमण करती है, और एक दिन धर्म-साधना के द्वारा स्वय ही ससार बन्धन से मुक्ति भी प्राप्त कर लेती है। इसीलिए कवि धर्म साधना करने की चेतावनी देते हुए कहता है—

**जीवा चेतो रे, साधु पणो लो सार,**
**काम भोग, त्यागन करो, जीवा चेतो रे।**
**जीवा चेतो रे, श्रावग ना व्रत बार,**
**सिव रमणी वेगी वरो, जीवा चेतो रे॥[2]**

आत्मा मे से कर्म-मल को दूर कर देना चाहिए। फिर शुद्ध आत्मा ही परमात्मा वन जाती है, किन्तु यह आत्मा राग एव द्वेप मे लिप्त होकर कर्मो का वन्धन बाँधती रहती है—जिन्हे भोगने के लिए मानव को इस जन्म मे तैयार रहना पडता हे और आगे भी पुनर्जन्म लेना पडता है। परम्परागत जाति-व्यवस्था पर भी कर्म-सिद्धान्त ने प्रहार किया। इस मान्यता से यह बात फलीभूत हुई कि जन्म से कोई ऊँचा-नीचा नही है। कर्म ही उसे ऊँचा या नीचा वनाते ह। एक शूद्र भी अच्छे कर्म उपार्जित कर कुलीन वन सकता ह। इस सिद्धान्त का एक लाभ यह भी हुआ कि मानव बुरे कार्यों से डरने लगा। वह इस बात को समझने लगा कि बुरे कार्य करने से बुरा फल भोगना पडेगा। कवि जयमल्लजी ने इसी सन्दर्भ मे उपदेश देते हुए कहा कि जब तक यह शरीर स्वस्थ रहता हे तब तक धर्म से लौ लगाये रखो—

---

१ जयवाणी, ११६
२ जयवाणी, १२३

जिहाँ लग पाँचू इन्द्रिय रे परवडी, जरा न व्यापी रे आय ।
देह माँहि रे रोग न फेलियो, तिहाँ लग धर्म सभाय ।।[1]

नरक के दारुण कष्टो से वचने के लिए मन, वचन एव काया को वश मे करना आवश्यक है—

नरक तणा दु ख दोहिला, सुणता मन कपाय ।
पाप कर्म इकट्ठा किया, मार अनन्ती खाय ।।[2]

कवि स्पष्ट शब्दो मे पाप-पुण्य के कारण ही दु ख-सुख का सम्भव होना मानता है—

जेता दु ख दीशे तिके, पाप तणे परमाण ।
जेता सुख दीसे तिके, धर्म तणा फल जाण ।।[3]

कर्मवाद एव पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त अन्योन्याश्रित है और जैन-धर्म का तो मूलाधार ही ।

मुक्ति —

कर्म-वन्धन से रहित होने का नाम मुक्ति है । मानव-आत्मा की चरम आध्यात्मिक उन्नति का परिणाम ही मुक्ति हे । जैन-धर्म की मान्यता के अनुसार जव आत्मा पुराने बँधे कर्मों को भोग लेती है या धर्म-साधना के द्वारा पूर्ण रूप से उन्हे नष्ट कर देती है तथा आगे के लिए कोई नये कर्मो को नही बाँधती है तो फिर सदा के लिए मुक्त हो जाती हे । अजर, अमर हो जाती है, राग एव द्वेष के वन्धन से सर्वथा मुक्त हो जाती है । मुक्ति के लिए आत्मा स्वय प्रयत्न करती है । वह ईश्वर के सामने गिडगिडाती नही है और न ही वह नदी-नाले पार कर पैदल तीर्थ-यात्रा करती है । जैन तीर्थकर, जो सभी मुक्ति को प्राप्त कर सके हे, उन्होने अपनी आत्मा मे ही मुक्ति का साधन खोजा है । दया-धर्म मे आस्था रखने से ही इस ससार के जाल से मुक्ति सम्भव है—

दया धर्म सू कर तू प्रेम ।
छोडो तुमे ससार जजाल ।।[4]

---

१ जयवाणी—१४१
२ वही—१४६
३ वही—१५१
४ जयवाणी—१५६

सुव्रतो के द्वारा ही बाँधे गये कर्मो का क्षय सम्भव हे क्योकि यह मानव जीवन क्षणभगुर हे। प्रत्येक सास आती है पर पता नही यह कब टूट जाय। इस ससार को कच्चा घर बताते हुए कवि कहता है—

**काचे घर राचो मति रे, सास रो किसी विश्वास।**
**उत्तम करणी थे करो, ज्यू पामो शिवपुर वास रे ॥**[1]

शिवपुर जाने के लिए चार मार्ग—दान, शील, तप व भावना का आश्रय लेना आवश्यक ह। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एव सम्यक् चारित्र की सम्यक् साधना से ही मुक्ति सम्भव है। चरित्र की शुद्धि के द्वारा अनेक जीव मुक्ति को प्राप्त कर सके हें—

**अनन्त जीव मुक्ति गया जीवा,**
**टाली आतम दोष ॥**[2]

चरित्र की शुद्धि राग-द्वेष को त्याग कर ही सम्भव हे। इस मसार से विरक्त हो सयम ग्रहण करने से जीव को आवागमन के चक्कर से मुक्ति मिल सकती है—

**कोई उत्तम नर चेतिया जीवा, लीधो सजम भार।**
**साँचो मार्ग पालने जीवा, पहुँता मोक्ष मझार ॥**[3]

आत्मा का चरम लक्ष्य मुक्ति ही है। सम्पूर्ण जैन-साधना की परिणति अन्तत मुक्ति मे ही निहित है।

इस प्रकार कवि जयमल्लजी की विचारधारा जैन-दर्शन से पूर्णरूपेण प्रभावित ह। उनका कौशल यह रहा कि उन्होने उसे सहज एव सरल रूप मे चित्रित कर, उसे व्यवहार योग्य बना दिया है।

---

१ वही—१६०
२ वही—१७७
३ वही—१७८

# सास्कृतिक अध्ययन

पचम अध्याय

# सास्कृतिक अध्ययन

"सस्कृति" शब्द का सम्बन्ध "सस्कार", "सस्क्रिया "या" सस्कृत" शब्दो से स्थापित किया जाता है, परन्तु यह अँग्रेजी के "कल्चर" शब्द के अधिक निकट है। जिन कार्यों या व्यापारो से हमारा आचार-विचार सजाया-सवारा हुआ माना जाय और हमारी रुचि शिक्षित या परिष्कृत समझी जाय, उन सबका सम्वन्ध "सस्कृति' से है।[1] कोई भी कवि चाहे साधु महात्मा हो या सासारिक प्राणी, किन्तु वह समाज एव सस्कृति से कटकर नही चल सकता। जैन सन्त कवि यद्यपि, सासारिक माया-मोह से मुक्त होते है तथापि उनके साहित्य मे उच्चकोटि का सास्कृतिक चित्रण मिलता है। हमारे आलोच्य कवि सन्त जयमल्लजी के साहित्य-सर्जन का मुख्य ध्येय यद्यपि सास्कृतिक चित्रण नही था, तथापि उनकी रचनाओ मे लोक विश्वास, लोकसस्कार, शकुन, रहन-सहन, लोकव्यवहार आदि का बहुत ही स्वाभाविक चित्रण मिलता है। सच तो यह है कि कोई भी कवि समाज से कटकर उच्च कोटि की साहित्यिक कृति रच ही नही सकता।

किसी भी धर्म सुधारक या धर्मोपदेष्टा के लिए यह आवश्यक है कि वह जनसाधारण की सास्कृतिक परम्पराओ और उसके दैनिक जीवन-व्यवहारो से परिचित हो, तभी उसका उपदेश प्रभावकारी बन सकता है और वह जन साधारण का सही मार्गनिर्देशन कर सकता है। आलोच्य कवि जयमल्लजी इसके अपवाद नही। जनमानस मे आध्यात्मिक एव धार्मिक चेतना भरने के लिए उन्होने जिस विशाल साहित्य की रचना की, उसमे सास्कृतिक चेतना के कई स्थल मिलते है। प्रधानत महाकाव्यो मे ही विशद सास्कृतिक चित्रण के लिए अवसर रहता है यद्यपि जयमल्लजी ने अपने छोटे कथाकाव्यो एव उपदेश प्रधान रचनाओ मे भी स्थान-स्थान पर सस्कृति-विषयक कई सकेत

---

१ मायारानी टण्डन — अष्टछाप के कवियो का सांस्कृतिक अध्ययन ३०।

दिये हैं। ये सकेत प्रधानत उपमानो एव वर्णनो मे देखे जा सकते हे। अध्ययन की सुविधा के लिए हम उन्हे निम्नलिखित शीर्षको मे बॉट सकते हें—

**१ पारिवारिक जीवन-चित्रण —**

मानव सामाजिक प्राणी हे। वह समाज मे रहकर ही उचित जीवन-यापन कर सकता हे। अनेक परिवारो का सगठन ही समाज होता है। ये परिवार उसके सामाजिक नियमो का निर्वाह करते हुए सगठित समाज का निर्माण करते है। इसे भी हम कई उपशीर्षको मे बॉट सकते हे।

**(क) परिवार का गठन एव विभिन्न सम्बन्ध —**

प्राणी का जन्म परिवार मे ही होता है। जन्मने ही अवस्था और पद के आधार पर पारिवारिक सदस्यो से उसके अनेक प्रकार के सम्बन्ध स्थापित हो जाते हे। मानव इन सम्बन्धो का निर्वाह विवेकपूर्ण ढग से करता है। जयमल्लजी की चरित्रपरक रचनाओ के अध्ययन से सूचित होता है कि उस समय सयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी। 'भगवान नेमिनाथ' एव 'सती द्रोपदी" मे सयुक्त परिवार का सकेत मिलता है। परिवार मे पुत्र का माता से अधिक स्नेह होता था। पुत्र सयम लेने से पूर्व सर्वप्रथम माता से ही आज्ञा लेता था।[1]

पारिवारिक सम्बन्धो की दृष्टि से मॉ बाप भाई,[2] भूआ[3] वहन,[4] देवर[5], सास,[6] आदि के उल्लेख मिलते हें। विवाह के समय दहेज मे दास-दासियो

---

१　कुवर कहे माता सुणो दीजे मुज आदेश।
　　सजम ले होसू सुखी, काटण-करम कलेश॥

—जयवाणी, ३०२

२　वोले भाई दोनु वान।

— जयवाणी, १८६

३　वहु सत्कार सम्मान दे, दीवी भूवा ने सीख

—जयवाणी, ४१३

४　वहन सुनन्दा देखने रे, उठी मोहनी झालो रे।

—जयवाणी, ३१०

५　हूँ समुद्रविजय जी रो डीकरो, तू सोच करे छे केमो।

—जयवाणी, २३३

　　(समुद्रविजय जी के लडके से तात्पर्य राजमती के देवर से है)

६　सासूजी थाका सही।

—जयवाणा, ३७३

को भी दिया जाता था। भगी, सैनिक आदि प्रजाजनो का उल्लेख तीर्थकरो के दर्शनार्थ जाते हुए वर्णन मे मिलता है। परिवार मे पुत्र का महत्वपूर्ण स्थान था। उसके बिना सारे कुल व्यवहार सूने लगते थे—

पुत्र बिना सजसी नहीं,
कुण राखेला थारो कुल व्यवहार के।
पुत्र बिना प्रभुता किसी,
पुत्र बिना नही वधे परिवार के॥

(ख) शिष्टाचार —

पारिवारिक शिष्टाचार का चित्रण यहाँ विशेष नही मिलता, क्योकि अधिकाश रचनाएँ गेय-पद रूप मे है। धार्मिक शिष्टाचार के रूप मे उल्लेख आया है कि जब राजा महाराजा या साधारण श्रावक आदि तीर्थकरो या धर्माचार्यों के दर्शनार्थ जाते थे तब तीन बार झुक-झुककर तिक्खुतो के पाठ,[1] से वन्दना करते थे। स्त्रियो मे भी इसी प्रकार का शिष्टाचार व्यवहृत था— "वन्दना करी तिक्खुतो भणी,।"

(ग) सस्कार —

सस्कार से आशय उन मागलिक कार्यों से है जो शास्त्रविहित होते है एव मानव के सर्वागीण विकास के लिए किये जाते है। मनु के अनुसार इन सस्कारो की सख्या १२ है पर ये १६ भी माने गए है।[2] इन सस्कारो मे से निम्नलिखित सस्कार का वर्णन जयमल्लजी की रचनाओ मे आया है।

(१) गर्भाधान एव जन्मोत्सव —

गभ मे आने पर धारिणी रानी सिह का स्वप्न देखती है एव समय पाकर

---

१ तिक्खुतो का पाठ इस प्रकार है
तिक्खुत्तो, आयाहिण पायाहिण करेमि वन्दामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देविय चेइय पज्जुवासामी मत्थएण वन्दामि।

२ सोलह सस्कारो के नाम इस प्रकार है—(१) गर्भाधान (२) पुसवन (३) सीमन्तोन्नयन (४) जात कर्म (५) नामकरण (६) निष्क्रमण (७) अन्नप्राशन (८) चूडाकर्म (९) कर्णवेध (१०) उपनयम (११) वेदारम्भ (१२) समावर्तन (१३) विवाह (१४) वानप्रस्थ (१५) सन्यास और (१६) अन्त्येष्टि

एक पुत्र को जन्म देती है।[1] तीथकर पार्श्वनाथ एव शान्तीनाथ की माताएँ भी चौदह स्वप्न देखती है। पुत्र जन्म के बाद छप्पन कुमारियाँ एव चोसठ इन्द्र आकर उत्सव मनाते ह। देवकी तो आठवे पुत्र के होने पर अत्यन्त ही प्रसन्न होती है। 'सारी नगरी की शोभा करी और बाजे विविध निशाण।' प्रजा को मिठाई बाँटी गई। स्त्रियो मे हर्ष समा ही नही रहा है, वे गीत गाकर बधाई देने लगी, चौक पूरने लगी।

(२) नामकरण —

जन्मोत्सव के बाद नामकरण सस्कार होता है। पार्श्वनाथ स्तवन मे बताया गया है कि सभी को खाना खाने बुलाया जाता है और नामकरण किया जाता है—

**न्यात मिली जीमण कीधो,**
**मिल पास कुवर नामज दीधो।**

देवकी के लाडले पुत्र का नामकरण बारहवे दिन होता है।[2]

(३) विवाह —

मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण सस्कार विवाह है। इसका भारतीय धर्मशास्त्र मे बडे विस्तार से वर्णन मिलता है। भारतीय सस्कृति मे विवाह वह सस्कार है, जिसमे युवक-युवती का जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध भाग्य द्वारा निश्चित किया हुआ समझा जाता है। विवाह सम्बन्ध मे सास्कृतिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण सकेत हमारे कवि ने किया है कि विवाह योग्य अवस्था होने पर ही इस महत्वपूर्ण सस्कार का प्रसग उठाया गया है।[3] उस समय बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी।[4] विवाह स्वयवर द्वारा भी सम्पन्न होते थे।

---

१ तिण अवसर ते धारिणी—सुपने सिंह ने देख।

—जयवाणी—२०३

२ जीहो बारसमो दिन आवियो, लाला
नाम दियो अभिराम।

—जयवाणी—२३६

३ योवन वय आण्या थका, कीवी सगाई अभिराम।

—वही—२३८

४ जाव जोवन पाम्या थका परण पाच सौ नार।

—वही—२०३

द्रौपदी का विवाह स्वयवर द्वारा होता है। भाटण द्रौपदी को स्वयवर मण्डप मे बैठे राजाओ के पास क्रमश ले जाती है। अन्त मे द्रौपदी पॉच पाडवो के गले मे वरमाला डालती है।

भगवान नेमिनाथ शीर्षक रचना मे विवाह सम्बन्धी अनेक रीति रिवाजो का वर्णन किया गया है। तोरण पर दुल्हे के आने पर लडकी की माता टीका करती है। उस समय नाक पकडने की प्रथा भी थी,[1] फेरे के लिए चवरी बनाई जाती है जिसके चारो ओर दुल्हा-दुल्हन को अग्नि के समक्ष फेरे खाने पडते है। जुवा-जुई खेलने की[2] एव विवाह से पूर्व वर-वधू के बाँधे गये ककण खोलने[3] की प्रथा का वर्णन भी नेमिनाथ के प्रसग मे कवि ने किया है।

विवाह के निमत्रण के लिए पीले चावल भेजे जाते है, कृष्ण इन्द्र को कहते है—

**बिगर बुलाया आविया रे, थाने किण पीला चावल दीधा।**

विवाह के अवसर पर भोज भी दिया जाता था। उस समय माँसाहार का प्रचलन था। नेमिनाथ के विवाह के अवसर पर राजमती के आवास पर भोज के लिए अनेक पशुओ को वाडे मे बाँध रखा था। नेमिनाथ उनका करुण-विलाप सुनकर सारथी से पूछ बैठे।

प्रत्युत्तर मे सारथी ने कहा।

**या जीवा रो होसी सहारो,**
**पोखीज सी तुमरो परिवारो।**

(४) दहेज —

भारतीय विवाह की एक प्रमुख रूढि है, कन्या के साथ-साथ भेट मे गृहस्थ जीवन उपयोगी सामान का देना। प्राय प्रत्येक राजकुमार को ढेरो वस्तुये दहेज मे मिलती थी। कवि ने दहेज प्रथा का विस्तृत वर्णन किया है।[4]

---

१ तोरण आया करे आरती
टीको काढने सासू खाचे नाको रे। —वही—२१६

२ जुवाजुई रमता थका, रखे वनडो जावे हारी हे वाई—
—जयवाणी—२०३

३ दोरो है काकण दोरडो, खोलणो पणे एकण हाथो हे वाई।
—वही

४ इसी कृति मे वर्णन शीर्षक मे इसका उदाहरण दिया है।
—वही—६४

### (५) मृत्यु समाधि मरण —

सावारणत मरण दो प्रकार के होते ह —नित्यमरण तथा तद्भवमरण। प्रतिक्षण आयु आदि का ह्रास होते रहना नित्यमरण और शरीर का समूल नाश हो जाना तद्भवमरण है। नित्यमरण का क्रम तो निरन्तर चलता रहता है और उसका आत्म परिणामो पर कोई विशेप प्रभाव नही पडता, लेकिन तद्भवमरण के अन्तर्गत कपायो एव विपयवासनाओ की न्यूनाधिकता के अनुसार आत्म परिणामो पर अच्छा अथवा बुरा प्रभाव अवश्य पडता है।[1] इस तद्भवमरण की सम्यक् परिशुद्धि के लिए सलेखना का विधान किया जाता है[2] मरण का इतना सुन्दर वरण अन्यत्र दुर्लभ है। यदि योग्य आहार-विहार और औपधोपचार करते हुए भी शरीर पर उनका अनुकूल प्रभाव न हो प्रत्युत व्याधि बढती जाये तो ऐसी स्थिति मे उस शरीर को दुष्ट की तरह छोड देना ही श्रेयस्कर हे। मृत्युपर्यन्त अन्न-जल का त्याग कर सथारा ग्रहण करना चाहिए।

जयमल्लजी ने मृत्यु पूर्व सथारा करने की बात अनेक स्थलो पर कही है। शान्तिनाथजी ने एक मास का सथारा किया था।

**सथरो एक मास तणो,**
**सम्मेत शिखर सिद्ध ठाम भणो।**

अर्जुनमाली भी पन्द्रह दिन का सथारा करता है—

**छ महिना लग चारित्र पाल्यो,**
**अर्ध मास रो सथारो सभाल्यो।**

### २ सामाजिक जीवन-चित्रण —

समाज शब्द मे ही सगठन-शान्ति, सास्कृतिक विकास आदि के भाव समाविष्ट रहते हे। मानव के उन गुणो का विकास भी समाज मे ही सभव हे जिनसे सस्कृति एव सभ्यता का विकास होता है। इसको भी हम इन उप विभागो मे विभाजित कर सकते हे —

---

१ तत्वार्थराजवार्तिक, पृ० ७ २२

२ मरणान्त के समय भूतकालीन समस्त कृत्यो की सम्यक आलोचना करके शरीर और कपायादि को कृश करने के निमित्त की जाने वाली सबसे अन्तिम तपस्या।

—जैन आचार—१२०

(क) **मनोविनोद के साधन —**

जीवन मे मनोविनोद का भोजन और पानी के समान ही महत्वपूर्ण स्थान है। बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक व्यक्ति इसके लिए लालायित रहता है। सामान्यजन एव राजवर्ग दोनो के मनोविनोदार्थ खेले जाने वाले खेलो के उल्लेख जयमल्ल जी के काव्य मे मिलते है।

स्कदक ऋषि की बहिन रानी सुनन्दा एव राजा पुरुषसिंह चौपड खेलते है। छोटे बालक सैर को जाते थे।[1]

(ख) **सामाजिक व्यवस्था —**

जाति-पाति का भेद उस समय नही था। साधु निम्न जाति से लेकर उच्च जाति तक के व्यक्तियो के यहाँ से आहार ग्रहण करते थे। शर्त केवल यही थी कि व्यवहार निर्दोष हो—

**ऊँच नीच मझम कुले,**
**इरजा जोतो हो गुरु आज्ञा जाय।**

उच्च कुलीन भी यदि कपटी एव पापी है तो वह नीचे कुल का ही व्यक्ति माना जाता था।

आश्रम व्यवस्था जैसे स्पष्ट उल्लेख तो नही मिलते पर राजा भोज-ऐश्वर्य का जीवन बिताने के अनन्तर प्रौढ होने पर साधु वृत्ति ग्रहण कर लेते थे।

(ग) **पर्वोत्सव —**

पर्वोत्सव मे पर्युषण पर्व का सर्वाधिक महत्व माना गया है। इसके भाद्रपद मास मे मनाये जाने का सकेत मिलता है। इस पर्व को अन्य लौकिक पर्वो की भाँति नही मनाया जाता वरन् व्रत-उपवास आदि रखकर धार्मिक क्रियाएँ करते हुए आध्यात्मिक पर्व के रूप मे इसे मनाया जाता है।

(घ) **त्यौहार —**

दीपावली—दीपावली सबसे बडा त्यौहार माना गया है। जयमल्ल जी ने इस लौकिक दीपावली के माध्यम से आध्यात्मिक दीपावली का रूपक बाँधा है। दीपावली के दो दिन पूर्व ही से उत्सव मनाये जाते है। रूप चवदस के दिन भली-भाँति स्नान कर नये वस्त्राभूषण पहने जाते है—'**राखे रूप चवदस दिन,** गहणा कपडा री चूप।'

---

१ एक समय रमता थका रे, बारे चाल्या बाल।

कार्तिक की अमावस्या के दिन दीपावली त्यौहार आता है। दीपको से घर सजाया जाता है। वन्दनवार टाकी जाती है। घर साफकर माडने माडे जाते है। मिष्ठान आदि वनाये जाते है जिनमे प्रमुख खाजा हे। रात्रि को लक्ष्मीजी का पूजन होता है। इन सब लोक व्यवहारो का वर्णन कवि ने वडी भावुकता के साथ किया है।

(ङ) **विश्वास एव मान्यताएँ**—प्रत्येक जाति की सस्कृति का घनिष्टतम सम्बन्ध उसमे प्रचलित विश्वासो एव मान्यताओ से रहता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जातीय जीवन के सगठन और नियन्त्रण मे विश्वासो एव मान्यताओ का बडा हाथ रहता हे।

**(च) पौराणिक विश्वास**—भारतीय सस्कृति मे पौराणिक विश्वासो का वडा महत्व है, क्योकि वास्तव मे पुराणो मे उसका यथार्थ स्वरूप लक्षित होता है।

वेदो मे पुत्र के बिना मुक्ति स्वीकार नही की गई हे। यही वात कवि ने भृगु पुरोहित के द्वारा इस प्रकार उच्चरित करवाई हे—

**पुरोहित बेटा ने इम कहे रे, वेद मे इसो रे विचार।**
**पुत्र बिना गति नहीं हुवे रे, तमे सुख विलसो ससार।।**[1]

(छ) **शकुन सम्बन्धी मान्यताएँ**—इन मान्यताओ की सत्यता की परख की या कराई नही जा सकती, किन्तु समाज का वहुत वडा भाग इन्हे मानता चला आ रहा हे। कवि जयमल्लजी ने भगवान नेमिनाथ कथा काव्य मे इन तथा-कथित शकुनो का वर्णन किया है। राजमती का दाहिना (जीवणा) अग फडकता है जो किसी अशुभ कार्यो का सूचक हे। अत उपचार के लिए सखिया कहती हे ऐसी वात मत वोलो और तुरन्त ही थूँक दो।

**३ विविध व्यवसायी —**

विविध व्यवसायियो का वर्णन कवि ने जीव की वार वार जन्म लेने की अवस्था को वताने के लिए किया हे। 'न सा जाई न सा जोणी' रचना मे वताया हे कि मानव को इन सव योनियो मे अवश्य ही घूमना पडता हे। इन योनियो के वणन मे ही अनेक व्यवसायियो का नाम आया है, यथा—कोली, भगी, तेली, खटीक, ठग, वीवी, सुनार, नाई, सौदागर, जाट, चारण, कायस्थ,

---

१ जयवाणी—१९०

जुलाहा, दिवान, भाड, बाजीगर, भाट, रगरेज, चण्डाल, हाकिम, कोतवाल आदि ।

यही पर चारो वर्णो का भी उल्लेख मिलता है—

ब्राह्मण क्षत्रिय ने वाण्या रे,
शूद्र वर्ण चारे ही आण्यारे ।[1]

पर कवि ने वर्ण व्यवस्था को परम्परागत रूप मे समर्थन नही दिया है। उसकी दृष्टि मे वर्ण का सम्बन्ध जन्म से न होकर कर्म या गुण से है। इसीलिए अर्जुनमाली, सद्दालपुत्र (कुम्भकार) और हरिकेशी (चाण्डाल) अपने गुणो के कारण समादृत हो सके ।

४ सामान्य जीवन-चित्रण —

चेतन जगत के समस्त प्राणियो की प्रमुख आवश्यकताएँ केवल तीन है—आवास, भोजन एव वस्त्र । तीनो की ओर कवि की दृष्टि इस प्रकार रही है—

(१) आवास —

सुबाहुकुमार के लिए उसके पिता पाँच सौ प्रासाद बनवाते है जो 'ऊँचा जाय लगे आकाश ।' छ ऋतुओ मे वे भिन्न-भिन्न आवास मे रहकर आनन्द भोगते है ।

वैराग्य पद मे जीवन की असारता को बताने के लिए सराय मे रुके पथिक का वर्णन किया गया है। यही पर कवि ने अप्रत्यक्ष रूप से आवास के एक स्थान सराय का भी वर्णन किया है—

जिम रहे पन्थी सराय मे जी,
रह्यो तिम वासे ही आय रे ।[2]

मृगालोढा नी सज्झाय मे मृगा पुत्र एक अन्धेरी कोठरी, जिसे राजस्थानी भाषा मे भूंहरा कहते है, मे रहता है ।[3]

(२) खान-पान —

खान-पान का वर्णन बहुत कम मिलता है। कार्तिक सेठ तपस्वी के कथनानुसार खीर बनाता है—

खीर रधावे कार्तिक रे ।

---

१ ज्यवाणी—८६
२ ज्यवाणी—१२४
३ भूहरा माहे छाने राखे ।

चावल-दाल का भी वर्णन आया है। मेघ कुमार साधु बनने के बाद अपने राजसी जीवन का स्मरण करता हुआ कहता है—

अठे माग न खावणो,
कठे घरा रा चावल दाल जी।[1]

मृगालोढा की माता अपने पुत्र को चावल ही भुँहरे मे जाकर खिलाती है।

(३) शृगार-प्रसाधन —

प्राय उस समय उवटन किया जाता था, चन्दन अगर का सुगन्धित लेप किया जाता था।

तीर्थंकर या साधु सन्त के दर्शनार्थ जाते समय रानियाँ शृ गार करती थी। विविध प्रकार के आभूषण एव वस्त्र धारण कर वे रथ मे बैठकर जाती थी।

मृगालोढा की माता गौतम को लेकर भुहरे मे जाती है उससे पूर्व 'राणी मेला मे आय ने रे वसतर पेहर्‌या आय रे' का सकेत मिलता है।

एक दो स्थानो पर आभूषणो का भी वर्णन आया है। मोती के हार का उल्लेख तो कवि ने अनेक स्थानो पर किया हे। उदाई राजा जब दीक्षार्थ जाता है, तब जुलूस निकलता है—'इत्यादिक जलूस कर कडा मोती न हार। गहणा विध विध भातरो।'

रत्न-जडित मूदडी, तावा री मूदडी, नथ, कान का आभूपण आदि का उल्लेख अम्बड सन्यासी की ढाल[2] मे मिलता हे।

५ राजनीतिक जीवन-चित्रण —

ये सन्त कवि राजनीतिक प्रलोभनो से बहुत दूर थे, इसलिए इनके काव्य मे राजनीतिक जीवन सम्बन्धी विशिष्ट तथ्यो के उल्लेख विस्तार मे नही मिलते फिर भी अनेक स्थलो पर राजनीति से सम्बन्धित कई बातो के सकेत अवश्य मिलते ह।

राजा जहाँ मन्त्रियो और अन्य कर्मचारियो को लेकर बैठता था उसे

---

१ जयवाणी, ३८०

२ न नथ ए मोकलो ए। तावा री मूदडी एक के ॥
फूला री जाति अनेक छए ज्यारी जुदी जुदी प्रमाण के,
कमल छ मोकलो ए काना नो आभरण जाणी के ॥

कवि ने 'परिषद' कहा है। राजा की पत्नी को रानी कहा गया है। राजा एव रानी दोनो ही महलो मे भोग-ऐश्वर्य का सेवन करते रहते थे। राजा अपने जीवन मे ही, राज्य देकर साधु हो जाते थे यथा-उदाई राजा अपने भानजे को राज्याधिकारी बना देता है। इससे एक तथ्य और पता चलता है कि बडा पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी नही होता था। उदाई राजा सारी सभा से राय लेकर ही केशी को राज्य देता है।

स्त्री को लेकर उस समय भी युद्ध होते थे। कृष्ण द्रोपदी के लिए पद्मोत्तर से युद्ध करते है। सवप्रथम वे दूत को सन्धि के लिए भेजते है। उसके बाद वे युद्ध करते है। युद्ध मे बाणो का प्रयोग विशेष किया जाता था।

राजा अत्याचारी भी होते थे। गॉव के गॉव लूट लिये जाते थे। बहुत कर लगाकर जनता को परेशान करते थे। एक इशारे से ही सारी प्रजा सेवक के समान कार्य करने लग जाती थी। वह सुनी बात को अनसुनी कर जाता था। किसी का भी वध कर देता था। ये सभी अनर्थ मृगालोढा का जीव पूर्वभव मे करता था।

राजा के यहॉ 'आयुधशाला' होती थी, जहॉ राजकुमार युद्ध-कला का प्रशिक्षण पाते थे। 'भगवान नेमिनाथ' मे ऐसा उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार इन सन्त कवियो ने समाज से दूर रहते हुए भी सस्कृति के विभिन्न पक्षो का यथासम्भव परिचय दिया है। साहित्य को समाज का 'दर्पण' कहने का तात्पर्य स्थूल रूप से यह है, कि कवि-विशेष ने किसी भी युग की कथा को लेकर काव्य रचा हो, प्रसगवश उसमे अनेक ऐसी बातो का भी उल्लेख हो जाता है जिनका सकलन करने पर कवि के काल का थोडा बहुत परिचय सरलता से मिल सकता है। 'श्रीकृष्णजी नी रिद्धि'' से रीतिकाल के एक ऐश्वर्यशाली राजा का चित्र उपस्थित हो जाता है। यद्यपि कवि रीतिकाल मे पैदा हुए तथापि वे अपने सिद्धान्तो के प्रतिपादन मे ही अधिक दृढ रहे। शृङ्गार की अगोध एव गहरी धारा को काटकर उन्होने आध्यात्मिकता की पवित्र एव निर्मल धारा बहाने मे कोई प्रयत्न उठा नही रखा।

तामस तपियो नर इसो,
आँख मिरच जिम आजीरे।
क्रोध विणासै तप सही,
दूध विणासै काजी रे।

× ×

साधु जी ऊठ्या सूरमा रे,
ज्ञान घोडे असवार।
कर्म कटक दल जूझिया रे,
विलव न कीव लिगार।
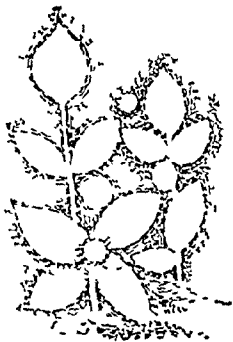
# परिशिष्ट

तामस तपियो नर इसो,
आँख मिरच जिम आजीरे ।
क्रोध विणासै तप सही,
दूध विणासै काजी रे ।

× ×

साधु जी ऊठ्या सूरमा रे,
ज्ञान घोडे असवार ।
कर्म कटक दल जूझिया रे,
विलव न कीध लिगार ।
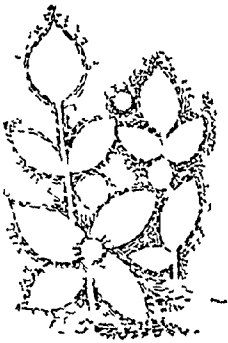
# परिशिष्ट

# अम्बड सन्यासी की ढाल[1]

दूहा —

आगे अतीत ऐहा हुआ सुणी जो चित्त लगाइ।
ग्यानी देव प्ररूपीया सूत्र उवाई माही ॥१॥
आठ प्रावजक ब्रामण तणी आठ प(क्ष)त्री नी जाणी।
च्यारो वेद मुख सू किया, ग्यानी जुगति वखाणी ॥२॥
अन पानी ब्राह्मण तणो तो चार श्रद्धारो ढाल माही।
सुचि धर्म प्ररूपता लोका माहि गठाई ॥३॥
माहरो धर्म करता थका, सुख सरगा मे जाई।
आठ कर्म छ केहवा, ते सुणीया चित्त लगाई ॥४॥

ढाल —

धर्म अराधी थए।
जीहा प्रावजक ने कलप नही ए।
कुवा तलावने माही।
नदी नाला वावडीए।
जीव समुद्र गाहा।
मरजादा करी एहवी ए ॥१॥
ग्यान नही मनमाक वाल तपसी कहै रे
जिण धर्म की खवरीक नाही ॥२॥
कुवादिक मे पेसे नही ए
असनान करवो नही कोइक।
मारीग वीची मोकलो ए
आडो प्याणी कहीइक ॥३॥

---

१ यह प्रति श्री विनयचन्द ज्ञान भडार, जयपुर मे सुरक्षित है।

## अम्बड सन्यासी की ढाल[1]

दूहा —

आगे अतीत ऐहा हुआ सुणी जो चित्त लगाइ।
ग्यानी देव प्ररूपीया सूत्र उवाई माही ॥१॥
आठ प्रावजक ब्रामण तणी आठ ष(क्ष)त्री नी जाणी।
च्यारो वेद मुख सू किया, ग्यानी जुगति वखाणी ॥२॥
अन पानी ब्राह्मण तणो तो चार श्रद्धारी ढाल माही।
सुचि धर्म प्ररूपता लोका माहि गठाई ॥३॥
माहरो धर्म करता थका, सुख सरगा मे जाई।
आठ कर्म छ केहवा, ते सुणीया चित्त लगाई ॥४॥

ढाल —

धर्म अराधी थए।
जीहा प्रावजक ने कलप नही ए।
कुवा तलावने माही।
नदी नाला वावडीए।
जीव समुद्र गाहा।
मरजादा करी एहवी ए ॥१॥
ग्यान नही मनमाक वाल तपसी कहै रे
जिण धर्म की खवरीक नाही ॥२॥
कुवादिक मे पेसे नही ए
असनान करवो नही कोइक।
मारीग वीचो मोकलो ए
आडो प्याणी कहीइक ॥३॥

१ यह प्रति श्री विनयचन्द ज्ञान भडार, जयपुर मे सुरक्षित है।

गाडी रथ नही बेसणु ए ।
जीव सुख असण माही ।
चढी नही चालणु ए ।
ऐसी मरजादा करइक ॥४॥
घोडे हाथी नही वइसणु ए ।
ऊट वलद न ऐम ।
भेसा वदली ऊपरे ए
चढी चालवो नेम की ॥५॥
नइण चोख मन होयो वणु ए ।
एही सगीत ने इन्द्रजालक ।
अखाडे नही वसणु ए ।
मोने कलपै नही तीन कालो ॥६॥
हरि फली नीक जाता तेहनो रस ।
ठोकर नही लगार के
मारीग मे आया थका ए ।
जाच्या वीना नही लेइक
चाले मारीग जोइ के ॥७॥
च्यारि विकथा करे नही ए
चोर राजा दिकभाड के ।
प्रजोजन बिना ए ।
ताणी लाग अनरथ डडकै ॥८॥
नही कलपै लोहरा पातरा ए
जीहा वहु मोला जाणी के
मोकली तीन जाती रा ए
माटी तम्बू का सिजाणी के ॥९॥
पातरा नही कलपे धातना ए
वहु रग कपडो जाणी के
सोना गेरू रग ए के
भगी धोवी सत्रु प्रमाणी के ॥१०॥
गहणा री जाति अनेक छ ए ।

म्हाने कलपै नही वसेख ।
न नथ ए मोकलो ए
तावा री सू दडो एक के ॥११॥
फुला री जाति अनेक छ ए ।
ज्यारी जुदी-जुदी प्रमाण के ।
कवल छ मोकलो ए
काना नो आभरण जाणी के ॥१२॥
जान जावे कलपे नही ए ।
चन्दणादिक नो विलेप के
गगा नी माटी मोकली ए
जोडी लगा विलेप के ॥१३॥
वहता पाणी कलसो भर ए
पीवा नो प्रमाण के
सोही वहतो थको ए
पडीया नो पचखाण के ॥१४॥
ते पाणी पीणो निरमलो ए
हेठे कायो नही होइको ए ।
जिको पाणी छाणी न ए
काठो कपडो हाथ रखे ॥१५॥
भगाडी रा लोहघर भीजे जीको ए
हेठेलो न कलपे कोइक ।
जीकोपाणी जाचता ए ।
दातार मील्यो पीछलइक ॥१६॥
इण रीति कष्ट करे घणु ए ।
खावण पीवण रो सन्तोष
घणा वरत पाली न ए
जाइ पहुँचे देवलोक ॥१७॥
जाणो दस सागर नो आउखो ए
धर्म विरिधीक हो एक ।
अम्बड ना सिख सात सै ए
ज्यारी साभलीये सोडक ॥१८॥

पाणी छाणी ने पीवणु ए
सचितना मरजादी ए।
फासु ते जीणी नही।
अणजाच्यारो पचखाण के।
सात सै सीख अम्वड तणा ए
भीसम जेठनो मास के
'किपलपुर' सू चालिया ए
'पुरीमताल' नगर मे आ विसा ए ॥२०॥
गगा तट जाता थका ए
पाणी गद छे इक सगलो पी गयो ए।
त्रीपा लागी छ आइके ॥२१॥
अटवी छावी अति घणी ए।
दातार दीसे नही कोइक ।
सात सो सुरीवी ए ।
माहु माही बतलाइक ॥२२॥
दसु दीसा सहु जाइ न ए
गवो करो नदी तीर के
पावन अटवी उलाग चलो ए
सोगन मोटा छे सार के ॥२३॥
गवेपणा कीधी अति घणी ए
दातार दीसे नही कोइक
सात सै असुरी था ए
वोल्या वात तेवर होइके ॥२४॥
वरत सा जीवो कलप नही ए
वीजी कारी न ल्या मे काइके
गगा तणी रेत मै ए दीधो सथारो थाइके ॥२५॥
मु डा खने गगा वहे ए।
अण जाच्यो त्याग के ।
थूक ज्यारा सुखी गया ए
असडी त्रिपा अपार के ॥२६॥

भड उपगरण न पातरा ए
बीजा उपगरण फेरी के,
माली न पावडी ए
पूछो ने करी दिया ढेर के ॥२७॥

दूहा —

गगा नदी ओवधार ने लुवीज तिण ठाइ ।
भीषम महिनो जेठनो तट गगा ने आइ ॥१॥
सात सै ही सूरिमा, अम्वडना सिख जाण ।
मन माही साठा घणा जिणवर वचन प्रमाण ॥२॥

ढाल —

जोइये सुवारथ ना सग।
समकति नो रस प्रगमे रे (ए देशी)
डील प्रमाणी ढीगलो रे
रेत नारी पडी लेइ कीधो एकणी ठाइरे ।
सातसै ही सुरी ।
माहि किण मतर ।
वेराग आय इ दिवल माही रे ॥१॥
जोइये अम्वड ना सिख सात सै ।
सुणीया सू इचरज थाइ रे ।
असडो सथारो कोई वीरलो करे रे ।
ग्यान करी प्रभोव समुझाइ रे ॥२॥
पीलग आसणादिक पुरिव दीसा रे ।
दीनो माथे ही हाथ चढाइ रे ॥३॥
निमोयणु कीय सिद्धा भणी रे ।
जी वो मुक्त विराज्यो जाइ रे ।
दूजो कीधो छे अरिहन्त शरणो रे ।
प्रभु वो मौखि जीवण रा कामी रे ॥४॥
ज्यानै पाचू अग नीमाइ रे ।
वन्दणा करि छे वारम्वार रे ।
तीजो नमोत्थुण अम्वड भणी रे ॥५॥

हमारो धर्म आच्यारीज सार रे।
सइर उपदेश साभलो जारी मुख थको।
धीर सुरावग ना व्रत वारा रे।
व्रत लेई त्रिवाधा करि रे।
सूरि पचख्या अठारे ही पाप रे ॥६॥

अठै करा छा मे आखड्ड रे।
प्रभु देखी रहो छो आप।
असणदिक चारू आहार नो रे।
जावो जीव पचक्खाण रे ॥७॥

सात सै सन्यासी काया भणी रे।
वोसरावी छे सास उसास रे।
भलो थान आऊ पूरो किया रे
पॉच मे देवलोक कीधो वास रे ॥८॥

दस सागर नो आउखो रे।
धर्म का सरव अराधीक रे।
सिख तो अम्वड ना सारा थाइ रे
अम्वड ना सिख सात सइरे ॥९॥

**दोहा —**

पूछा अम्वड तणी ऊसी भइ, करेज गौतम साम।
एक मन थइ साभलो, हिवडै राखो फाम ॥१॥

**ढाल —**

**म्हारा राजा ने धरम सुणाइवे ' एहनी**

माहोमाही वहु जिन कहे,
किपल नगर मझारी हो स्वामी।
सोम घर करजिए पारण
सव धरि माही जाइजी ॥ स्वामी ॥
अम्वड सिनासी ऐहवो,
मानी जे ए केम हो ॥१॥
वलता वीर इसडी कहे
हे तो सभी साची वात हो ॥ स्वामी ॥
अम्वड सिनासी ऐहवो ॥२॥

म्हारो पणा माही प्ररूपणो,
ऐहा जाण सुख्यात हो ।।३।।
इन रो अरथ किसो छे,
सोमघरा को करि के खाइ हो ।
अम्वड जी छे एकलो
सोमघरी किम सुहाइ हो ।। गौतम ।।४।।
वीर कहे सुणि गोयमा,
यो प्रकृति नो भद्रीक हो गोयम ।
जाव बेले बेले पारणा ।
अगी इ रहत करि ठीकि हो ।। गौतम ।।५।।
सूरिए सामी आतपना ।
लीधी शुद्धि प्रणामी हो ।
तिण सू वैक्रियक लब्धि उपनो
तपस्या करता ऐम हो ।। गौतम ।।६।।
लोका न इचरज उपजावतो
तपरो महिमा थाइ हो गोयम ।
तिण सू अम्वड ऐहवो
सोमघरा पारणो कराइ हो ।। गौतम ।।७।।
अम्वड ए सुख छोडी न,
दीख्या लेवा समरथ हो ।
वीर कहे समरथ नही ए ।
सुरावरग ना व्रतधारी ए ।। गौतम ।।८।।
सुरावग व्रत चोखो पालि ने
टालसी निज नो दोस हो ।
आलोइ ने सलेखी
जासी पाच म देवलोक हो ।। गौतम ।।९।।
दस सागर नो आउखो
धर्म अराधीक थाइ हो ।
भरीया भडारा उपजसी
महाविदेह खेत्र माही हो ।। गौतम ।।१०।।

अनुक्रम मोहो होसी
अम्वड नो यो जीव हो ।
कली भणी मुनिवर होसी,
तपसो घोर अति सार हो ।। गौतम ।।११।।

केवल ग्यान उपज्या इम
जासी मुगत मझार हो ।
सूत्र अनुसारज मे लिखी
'सूत्र उवाई' अधिकार हो ।। गौतम ।।१२।।

मानीजे ए केम हो स्वामी,
मुझ उपरी कृपा करो ।
मा वाता इचरज आई हो
अम्वड सिडासी ऐहवो ।। गौतम ।। १३ ।।

**।। इतिश्री अम्बड नी सज्झाय ।।**

# मृगालोढा की ढाल[1]

**श्री वीतरागायनमः**

सासण नायक समरिये, भगवन्त श्री विरधमान ।
घणा जीवा ना तारका, दीधा छ काया-दान ॥१॥

अरिहन्त, सिद्ध, सुसाधु जी केवल भाषित धर्म ।
ए च्यारू मगलीक छे, वीजो मिथ्या भर्म ॥२॥

श्री आचाराग आद दे, अग्यारमो अग विपाक ।
चरित्र मृगालोढा तणो सुण जो सूत्र नी साख ॥३॥

ढाल —

पाचवा गणधर सुधर्म स्वामी
तिण ने जम्बू पूछे सिरनामी
पहला अध्ययन न अर्थ कहेवा ।
सुधर्म जी कहे जम्बू सुण जेहवा ॥१॥

तिण काले न तिण समै हुँतो,
मृगा नगर वहुवर्ण सजुतो ।
नगर तणो ईसान दिस जाण
चन्द्र वृख नामे उदाण ॥२॥

सुधर्म जखनो हुँतो देवल ।
पूर्ण भद्र नो वरण निकेवण ।
विजय नामे तिहा राजा जाणी ॥३॥

तेहने कुन्ती है मृगावती राणी ।
राय राणी नो वर्णन सुखदाई ।
ते देखालो सूत्र उवाई ॥

---

१ यह प्रति श्री विनयचन्द ज्ञान भडार मे सुरक्षित है ।

विजय पुत्र मृगा अगजात,
मृगा वालक नाम कहात ।।४।।

जन्म अध वहरो ने मू गो,
हुण्ड-मुण्ड, पागुल न गूँगो ।
भसम-दाह रोगाकुल काया,
अवयव अग कोढाया ।।५।।

नही वालक ने नाक न कान ।
आकार मात्र अग उमगा ।।
वाहिर दीसण रो नही ढगा ।।६।।

भु हरा माहे छाने राखे,
घर नो भेद न वाहिर भाखे ।
राणो भात पाणी दे छाने
रखै वात पडे किन पाने ।।७।।

तिण नगर एक जन्म नो अन्ध ।
वसे पुरुष रूप विकरन्द ।।
एक पुरुष सूझतो पकडी,
खचा चाले आगल कडी ।।८।।

मस्तक चाडी विखर्‌या केस,
देखो नी करमा री रेस ।
माँगत भीख मारतो भटका,
लारे माखी देती चटका ।।९।।

मृगा गाम ने घर-घर वार,
दो भिख्या करतो पुकार ।
हिव सामलजो आगल ऐम ।
समोमरण पहुँचे अध जेम ।।१०।।

तिण अवसर श्री वीर जिणद ।
वाग पधार्‌या सुर नर वृन्द ।।
विजय राजा पिण वादण आयो ।
कोणक जस तप तेज सवायो ।।११।।

दोहा —

इण अवसर ते अध नर, देखता ने कहे ऐम।
कुण महोछव इन नगरीय, इत रीझाए केम ॥१॥
देखत नर इसडी कहे, महोछव छे नही कोय।
वीर जिणद समोसर्या, वन्दण जाय सोय ॥२॥
अध पुरुख तेहने कहे, हूपण वादो वीर।
ते नर लकडी पकडिया लायो भगवत तीर ॥३॥
समोसरण भगवन्त ने, बैठा सुर नर वृन्द।
अन्ध पुरुष वन्दणा करे, कहे तिखुत्तो पाठ ॥४॥
भगवन्त दीधी देसना, सगला ने हित लाभ।
परिषदा सुण हरकत थई, आवी जिण दिस जाय ॥५॥
वड सीख श्री वर्धमान तो इन्द्रभूति अणगार।
अध पुरुष नी पूछा करे ते सुण जो हिय द्वार ॥६॥

ढाल —

तप सरीखो ए जग कोई नहीं रे एहनी देशी

हाथ जोडी कहे वीर ने,
विनो करि सोह मे।
जोय हो स्वामी,
अधा नर केईव घणा।
पण इसडा ही आधा होय हो स्वामी।
हूँ अरज करूँ छूं विनती ॥१॥
वीर जिणद इसडी कहे,
गुन गौतम म्हारी वात मुनिवर।
एक आधो दीठो हूव,
तो ए आधो किण भात हो गौतम।
उपगारी इम उपदिश ॥२॥
कहे गौतम कुण अध अछे,
रहे छे कुण से ठाम ओ स्वामी।

रुण्ड-मुण्ड किसडो इ छे
कीसूँ उणरो नाम हो स्वामी ॥३॥

वीर कहे निश्चय करी
'मृगा नगर' ने माहे हो गौतम ।
'विजयराज' नो डीकरो
'मृगारानी' मात कहाय हो गौतम ॥४॥

'मृगा-पुत्र' नाम डीकरो
जन्म तणो छे अध हो गौतम ।
अध रुण्ड-मुण्ड घणा,
हाथ न जावे दुगत हो गौतम ॥५॥

भस्म वाध दाह अति घणी
जोवे राणी सार विशेप हो गौतम ।
वन्दणा करी गौतम कहे,
आधा न देख हो स्वामी ॥६॥

वीर जिणद आज्ञा दिये
जिम तिणे सुख थाय हो गौतम ।
आज्ञा पाय इरजा जोवता,
मृगारानी रा घरा जाय हो स्वामी ॥७॥

रानी दीठा गौतम आवता,
हिय हरख बहु थायो स्वामी ।
ए आसण सेती उठनै,
सात-आठ पग जाय हो स्वामी ॥८॥

वन्दणा कर राणी कहे,
किस्यो प्रजोजन आज हो स्वामी ।
कहे गौतम हूँ आवियो
पुत्र देखण काज है बाई ॥९॥

मृगाराणी तिण अवसरे,
पछे जाया चारूँ वाल हो स्वामी ।
आभूषण सिणगार ने,
पाये पडेया तितकाल हो स्वामी ॥१०॥

देखो हमारा ए डीकरा,
वलता गौतम कहे वाय है वाई।
इहाँ थि प्रजोजन कोई नही,
थारो मोजी पुत्र दिखाय है वाई ॥११॥
भु हरा माही छाने रहे
ऊ जन्म तणो छे अध हे वाई।
मृगा पुत्र नामे अछे
सगलो ही कह्यो है सम्बन्ध है वाई ॥१२॥
उन वालक ने अन पाणी
तू करती सार सभाल है वाई।
विचरे छे इण रीत सू,
देखू थारो वाल है वाई ॥१३॥
मृगा रानी वलती कहे,
कोई वार न जाणता न हो स्वामी।
कुण ग्यानी थाहरे ऐहवो,
कही म्हारे छानेडी वात हो स्वामी ॥१४॥
सुण प्यारी देवता तणी
अपने नाण सिद्ध रहे वाई।
धर्माचार्य म्हारा भगवन श्री महावीर रहे ॥१५॥

दोहा —

इम चरचा करता थका भात पाणी नी थई वार।
ले जाता गौतम भणी दोखण नही तिवार ॥१॥
कदाच जो दोखण तणो, तो आज्ञा न देता साम।
गौतम न देखण तणो उपनो कतोहल काम ॥१॥
'मृगारानी' इम कहे पग छातो मुनिराय।
भात पाणी हूँ ल्याय ने पुत्र दिखा लूँ आय ॥३॥

ढाल —

पुण्य सदा फल ए देशी।
राणी मेहला मे आय ने रे।
वस्तर पेहर्‌याँ रे आ रे।

भू डी गध ने कारणे रे ।
जोड्यो कर्मा ना जोडा रे ।।१।।

धिग धिग कर्म ने ।
कर्म सगो नही कोयो रे ।
प्रतख देख लो,
मृगा लोढा नी सोयो रे ।।धिग०।।२।।

रसोडे आय गूठलो भर्‌यो रे ।
असणादिक भरपूर ।
आगल डोरडा खीचती रे ।
आई गौतम हजूरो रे ।।३।।

गौतम ने राणी कहै रे ।
आवो म्हारी थे लारे ।
साभल रिस केडे चल्या रे ।
पहुँता भुहरा रे वारो रे ।।धिग०।।४।।

च्यारा पुरा नी मुहपत्ती रे ।
राणी ना मुख वॉध ।
कहै गौतम ! थेई वॉध लो
आई भु हरा नी सॉधो रे ।।धिग०।।५।।

गौतम वाधी मुहपत्ती रे,
आठ पुडत तिण वार ।
मृगा राणी तिहा खोलियो रे ।
भुहरा तणो दुवारो रे ।।धिग०।।६।।

राणी मुख पूठो कियो रे
गध निकली तिण माही
साण साप गौनामडा रे ।
तिण थी अधिक कुहाँथो रे ।।धिग०।।७।।

आहार गध आया थका रे ।
वालक हर्षत थाय ।
मूर्च्छा गृद अति ही हुओ रे ।
चारू आहार करायो रे ।।धिग०।।८।।
आहार तुरत विगड गया रे ।
थयो लोही ने जो राध ।
तेही वल खाय गयो रे ।
इसडो रोग अगाधो रे ।।९।।
वालक देख गौतम तणा रे ।
अध-अवसाय मन थाय ।
पूरव भव इन वालके
जाडा पाप करायो रे ।।धिग०।।१०।।
मोटा व्रत भाजने रे ।
इण सल न काढिया कोय रे ।
प्रायश्चित लेय कीधो नही रे ।
पचखाण दीधा खोयो रे ।।धिग०।।११।।
जूना पाप चिरकाल ना रे ।
उदय हुवा छे हे ऐह ।
अथवा नरक मे उगर्‍या रे ।
भोगवे छे नर तेहो रे ।।धिग०।।१२।।
मैं इन नर के दीठा नही रे ।
ए भोगवे पृथक पाप ।
मृगा रानी ने पूछने रे ।
वलिया गौतम आपो रे ।।धिग०।।१३।।
मृगा नगर थी नीकल्या रे ।
आगे जिहां महावीर ।
तिक्खुतो नी वन्दना करी रे ।
पूछा करे मवीरो रे ।।धिग०।।१४।।

दूहा —

आग्या माँगू हूँ आपनी गयो तो नगर मझार ।
प्रभु जी कह्यो सो देखियो तिण मे फेर न सार ।।१।।

वात सहु राणी तणी, वालक नो वृत्तान्त ।
गौतम प्रभुजी आगलै प्रकाश्यो करि खत ।।२।।

पूरव भव ए कुण हुन्तो रहतो नगर कुण गाँव ।
कीधी चामु कीवा कीवा कासूँ हुँतो नाम ।।३।।

गोत्र इणा रो कुण हूँतो सूँ किया सूँ जाडा पाप ।
तिण सूँ हुवो वालक इसो कृपा करो प्रभु आप ।।४।।

गौतम गणधर आददे, वीजा हि वली साथ ।
वीर कहे गोयम सुणो, इण कीधा अपराध ।।५।।

ढाल —

कपूर हुवे अति ऊजलो । ऐहनी ।

तिण काल ने तिण समे जी,
इण जम्बूदीप मझार ।
नगर सेदवार भरत खेत्र मे जी ।
वरणवे रिध अधिकार हो गोयम ।।१।।

पूरव भव सुण एम,
निसचई करी ने जाण जेई ।
कर्म किया इण जेम हो गोयम ।।२।।

तिण सुद्वार नगर तणो जी,
हुँतो अधपति राय,
वर्णन "उवाई सूत्र" मे कहयो
विस्तार लगाय हो गोयम ।।३।।

नही दूर अति टूंकडो जी,
अगन कुण दीस जाण ।
सदुवार नगर थकी जी
खेडो विजय वरधमान हो गोयम ।।४।।

धूल कोट थल भुमिका जी,
रिद भवन विस्तार ।

थको (को) गाँव पाच से तणो जी,
लागे तिण री लारे हो गोयम जी ॥५॥
तिण खेडा विषे हुँतो जी,
एकाई रठ कुड,
अधमी जीव किण सुख हुवा जी
विगरत मुख नो नूर हो गोयम ॥६॥
ओ किण ने दुख नुपजेवा (?)
तो मन हरखत थाय।
जो किण रे सुख साभल्या जी,
मुख देखो कुम्हलाय हो गोयम ॥७॥
करतो खेडोनी हाकमी जी,
पाँच से गामा रो काम।
सार सभाल करतो थको जी,
आग्या मनाय आराम हो गोयम ॥८॥
मे ठीक पणे ए विचरतो जी,
तिण ही खेडा ने माँहि
करतर धन-धान खोसतो जी,
आकरा कर लगाय हो गोयम ॥९॥
घान खलो न मे देख ने जी।
इधका भरण भराय
चाडा सुकोमल चग्रही जी
लोभे ग्राम मे राय हो गोयम ॥१०॥
लहणो अणकूँ माँग ने जी,
लारे प्यादा मुक रइत हेलो पुकारजी।
न मानत काई कूक हो गोयम ॥११॥
एकण माथे दण्ड करा के,
देतो घणा सिर नाख।
किण ने ही तिणकारने जी,
वचन माहे वहु वाक हो गोयम ॥१२॥
जधिको धानज कूतने जी,
चाके द्रव्य न भाल।

म्हारे वाप दे इक राजा,
पछे पाडे इहवाल हो गोयम ।।१३।।

चोरा ने वहु पोखने जी,
गामा देरावे लाय ।
लोका ने करे आकुला जी,
इण विध धन लुसा (टा) य हो गोयम ।।१४।।

वाट पाड लुटे लोकने जी
पीडा उपजावी पूर ।
आचार भ्रष्ट करतो थको जी
दुष्ट कर्म वहु-कूड हो गोयम ।।१५।।

आँगलियाँ थी तर्जतो जी
केहने चपेटा लात ।
इण रीते निरधन काया जी
विचरो छो इण भाँत हो गोयम ।।१६।।

वले एकाई एहवो जी
तिण ही खेडा नी माय ।
ते छे मुखिया गाम राजी
ए चौधरियाँ मिल जाय हो गोयम ।।१७।।

खेडा ना राइसर माडवी जी
जिहा लगे सारथवाह ।
अवर अनेराइ लोकनो जी
कारण कारज नेई राह हो गोयम ।।१८।।

म तो गुरु निसचा विखे जी
बले विवहाँ रे वात ।
असुणी ने सुणी कहे जी
सुणी ने नट जात हो गोयम ।।१९।।

देख्यो भाल्यो ने ग्रन्थ मे
आगे होय नट जाय ।
जाणतो कहे जाण नही जी
एहवा करम कराय हो गोयम ।।२०।।

इण एकाई ऐहवा जी,
कुवध विचारग चाल।
जाडा पाप करतो थको जी,
एम गमायो काल हो गोयम ॥२१॥

दूहा —

एकाइ रठ कुड ने इण अवसर ने जोण।
देही म्हारे ऊपनो साथे ही सोहले रोग ॥१॥
सास खास ज्वर दाहरो, भगदर पेट सूल।
अर्ष अजीरण आखीया, माथे सूल अतुल ॥२॥
उँकारी अख वेदना कान वदन खज पास
जलोदर गलत कोढ नो, एह सोलह रोग ना-नाम ॥३॥
सोले ही रोग प्राभव्यो एकाइक हे राम।
सेवक ने तेडाय ने, हुकम करावे छे केम ॥४॥

ढाल .—

शील कहे जग हूँ बडो ' ऐहनी देसी
खेडा मे तू जाय ने
जठे घणा मिले छे वाटो रे।
करे घोषणा एहवी
हुवे नरा ना थाटो रे ॥१॥
ज्यो जो रे कर्म विडम्वना,
विण भुगत्या नही छोडे जी।
सरीर तणी छाया परे
ए करम गाठा न गाठो थी ॥२॥
एकाइ रठ कूड ने
ए उपना सोले रोगो रे।
कोइ वैद वेदनो पुत्र हुवे
जाण पुत्र जोगो रे ॥३॥
कोई तिगच्छ तिगच्छनो डीकरो,
रोग माहिली माहिलो एको रे।

उपसर्मां हमाथी रे वधावणी,
देर ए काई बिसेखो रे ।।४।।
एहवी करि उदघोषणा
मारी आग्या पाछी सुपोरे ।
म्हाने आग्या करि घोषणा
वेद आयो करि चुपे रे ।।५।।
हाथ सहस्त्र ओखध लेई
आया एकाइ ने पासो रे ।
रोग निदान पूछ ने,
उपचार करै हुलासो रे ।।६।।
नाडि देख मरदन करे
को इन्ही पाणी पावे रे ।
वमण कराय विरेच दे
उषण जल छडकावे रे ।।७।।
कोइक डाम्मे डाजल ने,
घणा औषध कटपाणी रे ।
नवडावे अग चौपडे,
घणी चरम बासाणी रे ।।८।।
वाटी तेल वाटी चरम
अपादान माहि घाली रे
वास देइ पावे भात रो
सिर फा डेखुर डाली रे ।।६।।
चीरा देइ चामडी
गद पाछणा देई रे
मृग ना चव धाय रे
तेल सेती छडकेइ रे ।।१०।।
पवनादिक आडा करी
अग ने चावढास केरे ।
रोहणी प्रमुख तणी
पावे छाल विसेखो रे ।।११।।

मूल कन्द पान फूल नो
फल ने बीजी विचारी जी।
चूरण गोली ऊख दे,
भेषज कीना भारी जी ॥१२॥
बछे सोलो माहिलो
जो एक रोग जावे दूरो रे।
आशा बधाने ऐहवी
तो आवे वधाइ पूरौ जी ॥१३॥
इम वछा करता थका
सोला माहिलो एको जी।
रोग तो उपसमीयो नही
थाका वेद वइसेखी जी ॥१४॥
सगला वेदज ओसध्या,
नाइ वधाइ कायोजी।
विलखा थइ हाथ झाट के
आया तिण दिस जायो रे ॥१५॥
ए काइ मन जाणीयो
चढ गया सहुँ थाका रे।
घर नाउ सकाया सारथी
औपध पाछ न राखी रे ॥१६॥
हिव उख दे औषध न लगे
उपाय घणा ही करियो रे।
सोलह रोग प्रामव्यो
आर्त्तरुद्र पड्यो रे ॥१७॥
राज देस धन नारीयाँ
विपय मूर्च्छाणो पुरो रे।
निरखे धन हवेलियाँ
जु जु अधिको फूरो रे ॥१८॥
अभिलाषा वाछा घणी
आरत्त रुद्र ध्यान ध्यायो रे।
वरस अठाइमेनो आउखो,
काल किये तिण ठायो रे ॥१९॥

उपसर्गां हमाथी रे वधावणी,
देर ए काई विसेखो रे ॥४॥
एहवी करि उदघोषणा
मारी आग्या पाछी सुपोरे ।
म्हाने आग्या करि घोषणा
वेद आयो करि चुपे रे ॥५॥
हाथ सहस्र ओखध लेई
आया एकाइ ने पासो रे ।
रोग निदान पूछ ने,
उपचार करै हुलासो रे ॥६॥
नाडि देख मरदन करे
को इन्ही पाणी पावे रे ।
वमण कराय विरेच दे
उषण जल छडकावे रे ॥७॥
कोइक डाम्मे डाजल ने,
घणा औषध कटपाणी रे ।
नवडावे अग चौपडे,
घणी चरम वासाणी रे ॥८॥
वाटी तेल वाटी चरम
अपादान माहि घाली रे
वास देइ पावे भात रो
सिर फा डेखुर डाली रे ॥९॥
चीरा देइ चामडी
गद पाछणा देई रे
मृग ना चव धाय रे
तेल सेती छडकेइ रे ॥१०॥
पवनादिक आडा करी
अग ने चावढास केरे ।
रोहणी प्रमुख तणी
पावे छाल विसेखो रे ॥११॥

मूल कन्द पान फूल नो
फल ने बीजी विचारी जी ।
चूरण गोली ऊख दे,
भेषज कीना भारी जी ॥१२॥
बछे सोलो माहिलो
जो एक रोग जावे दूरो रे ।
आशा बधाने ऐहवी
तो आवे बधाइ पूरी जी ॥१३॥
इम बछा करता थका
सोला माहिलो एको जी ।
रोग तो उपसमीयो नही
थाका वेद वइसेखो जी ॥१४॥
सगला वेदज ओसध्या,
नाइ बधाइ कायोजी ।
विलखा थइ हाथ झाट के
आया तिण दिस जायो रे ॥१५॥
ए काइ मन जाणीयो
चढ गया सहुँ थाका रे ।
घर नाउ सकाया सारथी
औपध पाछ न राखी रे ॥१६॥
हिव उख दे औषध न लगे
उपाय घणा ही करियो रे ।
सोलह रोग प्रामव्यो
आर्त्तरूद्र पडयो रे ॥१७॥
राज देस धन नारीयाँ
विषय मूर्च्छाणो पुरो रे ।
निरखे धन हवेलियाँ
जु जु अधिको फूरो रे ॥१८॥
अभिलाषा वाछा घणी
आरत्त रूद्र ध्यान ध्यायो रे ।
वरस अठाइसेनो आउखो,
काल किये तिण ठायो रे ॥१९॥

रतन-प्रभा नरक ऊपनो
आउखो सागर एको रे ।
ए भाव गौतम आगले
वीर कह्या रे वीसेखोजी ॥२०॥

दूहा —

पहला नरक थी नीकलो मृगा नगर ने माही ।
विजय राज मृगावती गर्भ उपनी आय ॥१॥
जव ए बालक अवतरयो, माय ने बहुली पीड ।
अहिसता अति दोहली, वेदन ऊजल सरीर ॥२॥
इण गरभ तणा प्रताप सु राणी सू फिरायो राय ।
अणिद्ध अकत अलखावणो, दीठी पणि न सुहाय ॥३॥
तव राणी इम जाणियो, पहली हू तो प्यार ।
हिव लागू अलखावणी तो ए गर्भ तणो उपचार ॥४॥
नाम गोत वाछे नही दीठी सुहावे केम ।
हिव उखध इसडो करू, गर्भ-गले ए जेम ॥५॥
सारू पाडू ए गहलया, मारू एह वाल ।
राणी करम तणइ वसइ चीतवियो तिणकाल ॥६॥
खारी तीखी तूसरी, बहुली वस्तु खाय ।
गर्भ सारण प्राण तणी लगी नही छै काय ॥७॥

ढाल :—

काज सुधारे चतुर हुवे जिके रे । ए देशी ।

पापी वालक गले सडे नही रे,
राणी थाकी हे विसेरण
पर्व सइ गर्भ लया वहे रे ।
धिग धिग करम नी रेस ॥१॥
कर्म थी न छूटे रे कोई विणभोगव्यो रे
कुण राजा कुण रक ।
एह विपाक ससार जाण ने रे,
करज्यो धरम निसक ॥२॥

वालक गर्भ माँहि वसता थका रे,
अभितरणी अठ नाडी ।
वह रही छे लोहि राध सु रे,
आठ ही वाहि विचार ॥३॥

राध वहे छे आठे नाडि मे रे ।
आठ लोहि जाण ।
दोय-दोय कान ने आतरे रे,
दोय दोय आख प्रमाण ॥४॥

दोय दोय नाक ने आतरे रे
धमणी अन्तर दोय ।
वह रही छे लोही राध रे ।
सर्व मिली सोले होय ॥५॥

वालक माहि थकी ऊपरो रे
अगी रोग वाउ विकारे ।
भसम हुय जाय आहार करे
जिको रे प्रणमे राध लोही अपार ॥६॥

तेही राध लोही वलि आहार रे
इसो भसम नामा रोग ।
तिणरा दुःख उपनो गर्भ मे थका रे ।
हर हर करम सजोग ॥७॥

दुखे दुखे गर्भ वहता थका रे,
नीठ लिया नव मास ।
जाति अध वालक राणी जनमियो रे,
जाव आका मित्र प्रकासक ॥८॥

राणी डरपी रूड-मुड देखने रे
घणी उपीमी त्रास ।
धाय माता भणी वुलाय ने रे
वचन कहे रे विमास ॥९॥

इण वालक न एकते जाइरे
नाख उकरडी माहि ।

तहत वचन करि गई राजा कनेरे
वीनवियो महाराय ॥१०॥
राणी जायो इसडो डीकरो,
अधो अधो रूप ।
रूँड मु ड देखी राणी डरी रे,
सरव कही सण भूप ॥११॥
कहो तो नाखु के नही नाखु रे,
एम कह्यो छे धाम ।
सुण ने उठियो राय सतापो सूरे
कहे राणी ने आम ॥१२॥
जो तू प्रथम ने नाखसी रे
पछे थिरवाल ने थाय ।
जतन करेसी पहिला वाल नो रे
जो हुवे पाछला री चाहि ॥१३॥
इण वालक ने तू छाने थकी,
ऊडो भु हरा माहि ।
भात पाणी वहु सार करती रहे जी,
पाछे वाल थिर थाय ॥१४॥
वचन प्रमाण करी विजे राजनौ रे,
मृगा राणी विसेख ।
वालक नी सभाल करती रहे रे
तूँ आयो छे देख ॥१५॥
नारी जात भणी वालक तणी रे
हुवे छे वहुली पाप ।
मृगा राणी तिण ही कारिणे रे
करती कूवर नो कलाप ॥१६॥
तिण पछै च्यार पुत्र जनमीया रे
तेरे देखाडा तोय ।
मृगा लोढो ए दु ख भोगवे रे
इसा कर्म सह जोय ॥१७॥

दूहा —

तहत वचन करि वीर ने, पूछे गौतम धरि हेत ।
मृगा नामे बालको मरने जासी केथ ॥१॥

वीर कहे सुण गोयमा, एह मृगा नामे बाल ।
छवीस वर्ष आउ भोगवी, तब ए करसी काल ॥२॥

इठा जम्बूदीप न भरथ मे, वेताढ्यो परवत ने पास ।
सीह तणो कुल ने विप, सीह उपजसी तास ॥३॥

सो पण सीह अध-अधर साहोसी, पापी माहासीह सीक ।
जाडा कर्म करे भरी, खासी पहली नरक मे जीका ॥४॥

एक सागर नो आउखो प्रथम नरक नो माहि ।
दु ख भोगवे ने नीकली मर ने भुज पर थाय ॥५॥

ढाल—यतीनी —

पाप करिने भुज पर मरसी ।
जाय दूजा नरक अवतरसी ।
तिहाँ तीन सागर नी थीत
दु ख भोगवसी नित नित ॥१॥

नित दु ख भोगवनी कली ।
पखी होसी एह ।
काल करे तीजी नरक मे ।
उपजसी जाव तेह ॥२॥

चाल तेह सत सागर थीत थासी ।
नीकल ने सीह पणो पासी ।
सीह पाप घणाइज करसी ।
मर चौथी नरक मे पडसी ॥३॥

सागर दसनी थित कही ।
मरनै उर-पर होय ।
पाप तणा सचा करी ।
पच मी नरक हुसी सोय ॥४॥

चाल सोय नरक पचमी ठिका ।
पडसी सत्तरह सागर नी झीको ।
नीकल ने होसी नारी ।
जठे कर्म बाछेसी या भारी ।।५।।

भारी पाप करे मरी ।
छठी नरक मझार ।
बावीस सागर नो आउखे ।
माहो माहिनी मारि ।।६।।

चाल मार माहो मॉहि ।
कुण वारे निकले आसी मनख जिमारे ।
जिको हुँसी मनुख थती ।
सातमी जासी महाकर्मी ।।७।।

भारी कर्म ए जीवडो ।
सागर ते त्रीस आव ।
नीकली ने जलचर हुँसी ।
पचएन्द्रिय पाप सभाव ।।८।।

चाल मच्छ कच्छ गहा ससमीर ।
मृग कुल कोडि विचार
साडि बारह लाख कुल कोड ।
इत्यादिक जलचर जोडि ।।९।।

जलचर से एकी काम जे
अनेक लाखावार
मर-मर न ऐ अवतरी
इम भम सी जलचार ।।१०।।

जलचर ने भम निसरसी ।
जब चौपदे मे अवतरसी ।
इम उर-पुर भुजपुर जाण
खेचर पखी प्रमाण ।।११।।

पचइन्द्रिय प्रमाण स ।
तिर्यन्च योनि ने माहि ।

घणु भमसी प्राणीयों
इम विगलेंद्रिय कहाय ॥१२॥

विगलिन्द्रिय जात तीन जाणो
इम करूइ वनसपती आणी ।
इम वाउ तेउ ने पाणी
इम पृथ्वी काय वखाणी ॥१३॥

एह पाँचवा थावर माझि
लाख भवा अनेक ।
मर-मर ने वलि ऊपजी
ए ए कर्मा नी रेख ॥१४॥

गति करमा नी छे वाँकी ।
कुण राजा ने कुण राँकी ।
हिवैं आगे सुणो विस्तारो ।
इण रो किम हुसी निस्तारो ॥१५॥

दूहा —

अन्तर रहित तिहा थी मरी, सुपिण्ठ नगर मझार ।
अवतरसी वलदयापणइ जीवनपामी ससार ॥१॥
तिण हीज अवसरे न समय, रित पावस वरसाला
भरय गगा मोटी नदी, ढावक रीस खुलाज ॥२॥
सीगे ढहो घसक सी, ऊपर पडमी आय ।
वलद काल करी तिहा जिण हीज नगर उपाय ॥३॥

ढाल —

**जगत गुरु त्रिसला नन्दन जी री देसी—**

सेठ तणे घर वालको जी ।
हुसी गौतम एक ।
वाल भाव मुका थका जी ।
जोवन पाय सजेह ॥१॥

जगत गुरु कहयो है आगूचे ऐम ।
ज्याहरा वचन सुण्या थका जी ।
लगे धर्म सूं प्रेम ॥२॥

चाल सोय नरक पचमी ठिका ।
पडसी सत्तरह सागर नी झीको ।
नीकल ने होसी नारी ।
जठे कर्म वाछेसी या भारी ।।५।।

भारी पाप करे मरी ।
छठी नरक मझार ।
बावीस सागर नो आउखे ।
माहो माहिनी मारि ।।६।।

चाल मार माहो माँहि ।
कुण वारे निकले आसी मनख जिमारे ।
जिको हुँसी मनुख थती ।
सातमी जासी महाकर्मी ।।७।।

भारी कर्म ए जीवडो ।
सागर ते त्रीस आव ।
नीकली ने जलचर हुँसी ।
पचएन्द्रिय पाप सभाव ।।८।।

चाल मच्छ कच्छ गहा ससमीर ।
मृग कुल कोडि विचार
साडि वारह लाख कुल कोड ।
इत्यादिक जलचर जोडि ।।९।।

जलचर से एको काम जे
अनेक लाखावार
मर-मर न ऐ अवतरी
इम भम सी जलचार ।।१०।।

जलचर ने भम निसरसी ।
जव चौपदे मे अवतरसी ।
इम उर-पुर भुजपुर जाण
खेचर पखी प्रमाण ।।११।।

पचइन्द्रिय प्रमाण स ।
तिर्यन्च योनि ने माहि ।

(२४) दुःखविपाक सूत्र — स० अमोलक ऋषि
(२५) ध्वन्यालोक — आनन्दवर्धन
(२६) पूज्य गुणमाला — मुनि श्री चौथमल जी
(२७) बीकानेर राज्य का इतिहास — डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा
(२८) भगवती सूत्र — स० अमोलक ऋषि
(२९) मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रथ — स० शोभाचन्द्र भारिल्ल
(३०) व्याख्यान नवरत्न माला — स्वामीजी श्री चौथमल जी।
(३१) साहित्य के त्रिकोण — डा० नरेन्द्र भानावत
(३२) साहित्य दर्पण — विश्वनाथ
(३३) सुखविपाक सूत्र — स० अमोलक ऋषि
(३४) सोलह सतियाँ — स० शोभाचन्द्र भारिल्ल
(३५) हिन्दी साहित्य का आदिकाल — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(३६) हिन्दी साहित्य का इतिहास — प० रामचन्द्र शुक्ल
(३७) हिन्दी साहित्य की भूमिका — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(३८) ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र — स० अमोलक ऋषि

पत्र-पत्रिकाएँ

(१) अमर भारती, (आगरा) स० श्रीचन्द सुराना "सरस"
(२) अनेकान्त (दिल्ली) स० परमानन्द शास्त्री
(३) जिनवाणी (जयपुर) स० डा० नरेन्द्र भानावत

चाल सोय नरक पचमी ठिका ।
पडसी सत्तरह सागर नी झीको ।
नीकल ने होसी नारी ।
जठे कर्म बाछेसी या भारी ।।५।।

भारी पाप करे मरी ।
छठी नरक मझार ।
बावीस सागर नो आउखे ।
माहो माहिनी मारि ।।६।।

चाल मार माहो माँहि ।
कुण वारे निकले आसी मनख जिमारे ।
जिको हुँसी मनुख थती ।
सातमी जासी महाकर्मी ।।७।।

भारी कर्म ए जीवडो ।
सागर ते त्रीस आव ।
नीकली ने जलचर हुँसी ।
पचएन्द्रिय पाप सभाव ।।८।।

चाल मच्छ कच्छ गहा ससमीर ।
मृग कुल कोडि विचार
साडि बारह लाख कुल कोड ।
इत्यादिक जलचर जोडि ।।९।।

जलचर से एकी काम जे
अनेक लाखावार
मर-मर न ऐ अवतरी
इम भम सी जलचार ।।१०।।

जलचर ने भम निसरसी ।
जव चौपदे मे अवतरसी ।
इम उर-पुर भुजपुर जाण
खेचर पखी प्रमाण ।।११।।

पचइन्द्रिय प्रमाण स ।
तिर्यन्च योनि ने माहि ।

आठे इ कर्म खपाय ने जी ।
जासी ए जीव मोक्ष ॥१०॥

प्रथम अध्ययन विस्तार मूं जी ।
भाव कह्या वरधमान ।
गौतम प्रमुख आगले जी ।
सुणीयाँ हूँ सहु धर ध्यान ॥११॥

जम्बु सिष्य ने कहे ऐम जी
श्री सुधर्मस्वामी जी
जैसा मै सुणी हिया जी
वीर कह्या छे आम ॥१२॥

अग इग्यारमा विपाक मझी ।
मृगालोढा नी सोय ।
अणुसारै "जेमल" कह्या ।
विपरीते मिच्छामिदुक्कडम मोय ॥१३॥

अठारे सै वाहरोतरे जी ।
काती वद आठिम माख ।
भव जीवा वाँचोतरे जी
मुँह मे जैणा राख ॥१४॥

जगत गुरु तिसला नन्दन वीर ।
हुवा ये मोटा साहस धीर ।
घाली थे घणा धर्म नी सीरे
म्हेलाये भव जल पली तीरे ॥१५॥

●●

तथा रूप साधा कने जी ।
साभल जिनवर धर्म ।
देसे परकारे मु ड हुसी जी ।
तज ससार नो भरम ॥३॥

पॉच सुमते समतो हुसी जो ।
तीने गुप्त विसाल ।
गुपत ब्रह्मचर्य पालसी जी ।
अणगार म्हा दयाल ॥४॥

चोखो चारित्र भाव सूँ जी ।
घणा काल लगे पाल ।
आलौइ निसल थइजी ।
काल अवसर करि काल ॥५॥

सो धर्म देवलोक ने विषे जी ।
ए ऊपज सी जाय ।
थित पूरी करी ने चवी ।
महाविदेह ने माँहि ॥६॥

अवतरसी उत्तम कुले जी ।
जिहाँ भरिया भडार ।
रीधवत वहुला हुँसी जी ।
सुख सासता वहुसार ॥७॥

पाच धाय पालीजतो जी ।
दिड पइना जेम ।
वहोत्तर कला ने भणकरी जी ।
जाव उवाइ एम ॥८॥

घर त्यागे साधु हुसी जो ।
आणी स रुडो ध्यान ।
घोर मोटो तपसी हुइ जी ।
पासी केवल ज्ञान ॥९॥

केवल प्रवज्या पालने जी ।
टाली आतम दोप ।

आठे इ कर्म खपाय ने जी ।
जासी ए जीव मोक्ष ॥१०॥

प्रथम अध्ययन विस्तार सूं जी ।
भाव कह्या वरधमान ।
गौतम प्रमुख आगले जी ।
सुणीयाँ हूँ सहु धर ध्यान ॥११॥

जम्वु सिष्य ने कहे ऐम जी
श्री सुधर्मस्वामी जी
जैसा मै सुणी हिया जी
वीर कह्या छे आम ॥१२॥

अग इग्यारमा विपाक मझी ।
मृगालोढा नी सोय ।
अणुसारै "जेमल" कह्या ।
विपरीते मिच्छामिदुक्कडम मोय ॥१३॥

अठारे सै वाहरोतरे जी ।
काती वद आठिम माख ।
भव जीवा वाँचोतरे जी
मुँह मे जैणा राख ॥१४॥

जगत गुरु तिसला नन्दन वीर ।
हुवा ये मोटा साहस धीर ।
घाली थे घणा धर्म नी सीरे
म्हेलाये भव जल पली तीरे ॥१५॥

●●

परिशिष्ट—२

# सहायक ग्रन्थो की सूची


| | |
|---|---|
| (१) अन्तगड सूत्र | स० अमोलक ऋषि |
| (२) अलकार पारिजात | नरोत्तमदास स्वामी |
| (३) अष्टछाप के कवियो का सास्कृतिक अध्ययन | मायारानी टण्डन |
| (४) आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भडार, ग्रन्थ सूची—भाग १ | स० नरेन्द्र भानावत |
| (५) उत्तराध्ययन सूत्र | स० अमोलक ऋषि |
| (६) उपासकदशा सूत्र | ,, |
| (७) उववाई सूत्र | ,, |
| (८) ऐतिहासिक नोध | वाडीलाल मोतीलाल शाह |
| (९) कबीर ग्रन्थावली | स० श्यामसुन्दरदास |
| (१०) कालू उपदेश वाटिका | आचार्य तुलसी |
| (११) काव्यादश | दण्डी |
| (१२) गुण गीतिका | प० शोभाचन्द्र भारिल्ल |
| (१३) छन्द प्रभाकर | जगन्नाथप्रसाद "भानु" |
| (१४) जयवाणी | स० मुनि श्री मिश्रीमल जी 'मधुकर' |
| (१५) जैनागम तत्व दीपिका | प्र० श्री श्वेताम्बर जैन हितकारिणी सस्था, बीकानेर। |
| (१६) जैन आचार | डा० मोहनलाल मेहता |
| (१७) जैन आचार्य चरितावली | आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज |
| (१८) जैनत्व की झाकी | अमर मुनि |
| (१९) जैन दर्शन | डा० मोहनलाल मेहता |
| (२०) जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि | डा० प्रेमसागर जैन |
| (२१) जैन सिद्धान्त बोल सग्रह भाग १ से ८—तक | स० भैरोदान सेठिया |
| (२२) जोधपुर राज्य का इतिहास | डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा |
| (२३) ज्योतिर्धर जय | मुनि श्री मिश्रीमल जी 'मधुकर' |

(२४) दु खविपाक सूत्र स० अमोलक ऋषि
(२५) ध्वन्यालोक आनन्दवर्धन
(२६) पूज्य गुणमाला मुनि श्री चौथमल जी
(२७) बीकानेर राज्य का इतिहास डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा
(२८) भगवती सूत्र स० अमोलक ऋषि
(२९) मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रथ स० शोभाचन्द्र भारिल्ल
(३०) व्याख्यान नवरत्न माला स्वामीजी श्री चौथमल जी।
(३१) साहित्य के त्रिकोण डा० नरेन्द्र भानावत
(३२) साहित्य दर्पण विश्वनाथ
(३३) सुखविपाक सूत्र स० अमोलक ऋषि
(३४) सोलह सतियाँ स० शोभाचन्द्र भारिल्ल
(३५) हिन्दी साहित्य का आदिकाल डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(३६) हिन्दी साहित्य का इतिहास प० रामचन्द्र शुक्ल
(३७) हिन्दी साहित्य की भूमिका डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(३८) ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र स० अमोलक ऋषि

पत्र-पत्रिकाएँ

(१) अमर भारती, (आगरा) स० श्रीचन्द सुराना "सरस"
(२) अनेकान्त (दिल्ली) स० परमानन्द शास्त्री
(३) जिनवाणी (जयपुर) स० डा० नरेन्द्र भानावत

परिशिष्ट—२

# सहायक ग्रन्थो की सूची


| | |
|---|---|
| (१) अन्तगड सूत्र | स० अमोलक ऋषि |
| (२) अलकार पारिजात | नरोत्तमदास स्वामी |
| (३) अष्टछाप के कवियो का सास्कृतिक अध्ययन | मायारानी टण्डन |
| (४) आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भडार, ग्रन्थ सूची—भाग १ | स० नरेन्द्र भानावत |
| (५) उत्तराध्ययन सूत्र | स० अमोलक ऋषि |
| (६) उपासकदशा सूत्र | " |
| (७) उववाई सूत्र | " |
| (८) ऐतिहासिक नोध | वाडीलाल मोतीलाल शाह |
| (९) कबीर ग्रन्थावली | स० श्यामसुन्दरदास |
| (१०) कालू उपदेश वाटिका | आचार्य तुलसी |
| (११) काव्यादर्श | दण्डी |
| (१२) गुण गीतिका | प० शोभाचन्द्र भारिल्ल |
| (१३) छन्द प्रभाकर | जगन्नाथप्रसाद "भानु" |
| (१४) जयवाणी | स० मुनि श्री मिश्रीमल जी 'मधुकर' |
| (१५) जैनागम तत्व दीपिका | प्र० श्री श्वेताम्बर जैन हितकारिणी सस्था, बीकानेर । |
| (१६) जैन आचार | डा० मोहनलाल मेहता |
| (१७) जैन आचार्य चरितावली | आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज |
| (१८) जैनत्व की झाकी | अमर मुनि |
| (१९) जैन दर्शन | डा० मोहनलाल मेहता |
| (२०) जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि | डा० प्रेमसागर जैन |
| (२१) जैन सिद्धान्त बोल सग्रह भाग १ से ८—तक | स० भैरोदान सेठिया |
| (२२) जोधपुर राज्य का इतिहास | डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा |
| (२३) ज्योतिर्धर जय | मुनि श्री मिश्रीमल जी 'मधुकर' |

५ जोधपुर ११ चातुर्मास

सवत १७६२, १७६४, १७६६, १८००, १८०६, १८१५, १८१६, १८२५, १८२८, १८३३, १८३५

६ किशनगढ ५ चातुर्मास

सवत १७६८, १८१४, १८२०, १८२६, १८३७

७ जयपुर २ चातुर्मास

सवत १७६६, १८१७,

८ बोरावड १ चातुर्मास

सवत १८०७

९ जैतारण १ चातुर्मास

सवत १८०८

१० पीपाड १ चातुर्मास

सवत १८१०

११ भीलवाडा १ चातुर्मास

सवत १८११

१२ उदयपुर १ चातुर्मास

सवत् १८१२

१३ अमर रायपुर (बोराणा) १ चातुर्मास

सवत् १८१३

१४ बीकानेर २ चातुर्मास

सवत् १८१६-१८२२

१५ शाहपुरा २ चातुर्मास

सवत् १८३०, १८३८

१६ पाली २ चातुर्मास

सवत १८३२, १८३६

१७ नागोर ५ चातुर्मास

सवत् १७९३, १८०५, १८२१, १८२४, १८२७

तेरह वष स्थिरवास

सवत् १८३९ से १८५२ तक

# (शुद्धिपत्रक)

[प्रस्तुत प्रबन्ध आकार मे अधिक बडा नहीं है फिर भी इतना लम्बा-चौडा शुद्धि-पत्र देखकर शायद पाठक चौकेंगे ? वास्तव मे प्राचीन हस्तलिपि को स्पष्ट न पढने व समझ पाने के कारण तथा टाइप होने मे अशुद्धियाँ रह जाने के कारण, कुछ अधिकृत जानकारी प्राप्त न होने के कारण भी कुछ महत्त्वपूर्ण भूलें रह गई है, जिनका शुद्धीकरण विद्वद्वर्य स्वामीजी श्री लालचन्दजी म० सा० के निर्देशन मे किया गया है। पाठक शुद्धिपत्र ध्यान से पढे।

—प्रकाशक।]

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ३ | ६ | रीवा | रीया |
| ४ | २४ | १७७३ | १७७७ |
| ४ | २८ | १७८८ | सोजत मे कार्तिकी पूर्णिमा को वर्ष पूरा होकर मार्गशीर्षकृष्ण १ को नया वर्ष बैठता है। इस अपेक्षा से ८८ है। बाकी सवत् १७८७ ही समझना चाहिये। |
| ४ | २८ | थे | ये |
| ५ | ८ | तिथियो के | तिथियो मे ५ विकृतियाँ (दही, दूध, घी, तेल और मिठाई के) |

६ वर्षावास की तालिका इस प्रकार है।

(क) १ सोजत ६ चातुर्मास—

सवत् १७८८, १७९५, १८०२, १८०४, १८१८, १८३१

२ जालोर १ चातुर्मास

सवत् १७८९

३ दिल्ली १ चातुर्मास

सवत १७९०

४ मेडता ७ चातुर्मास

सवत् १७९१, १७९७, १८०१, १८०३, १८०६, १८२३, १८२६

५ जोधपुर ११ चातुर्मास

सवत १७६२, १७६४, १७६६, १८००, १८०६, १८१५, १८१६, १८२५, १८२८, १८३३, १८३५

६ किशनगढ ५ चातुर्मास

सवत १७६८, १८१४, १८२०, १८२६, १८३७

७ जयपुर २ चातुर्मास

सवत १७६६, १८१७,

८ बोरावड १ चातुर्मास

सवत १८०७

९ जैतारण १ चातुर्मास

सवत १८०८

१० पीपाड १ चातुर्मास

सवत १८१०

११ भीलवाडा १ चातुर्मास

सवत १८११

१२ उदयपुर १ चातुर्मास

सवत् १८१२

१३ अमर रायपुर (बोराणा) १ चातुर्मास

सवत् १८१३

१४ बीकानेर २ चातुर्मास

सवत् १८१६-१८२२

१५ शाहपुरा २ चातुर्मास

सवत् १८३०, १८३८

१६ पाली २ चातुर्मास

सवत १८३२, १८३६

१७ नागोर ५ चातुर्मास

सवत् १७६३, १८०५, १८२१, १८२४, १८२७

तेरह वर्ष स्थिरवास

सवत् १८३९ से १८५२ तक

(ख) चातुर्मास की अनुक्रमणिका

| | |
|---|---|
| (१) १७८८ सोजत | (२७) १८१४ किशनगढ |
| (२) १७८९ जालोर | (२८) १८१५ जोधपुर |
| (३) १७९० दिल्ली | (२९) १८१६ बीकानेर |
| (४) १७९१ मेडता | (३०) १८१७ जयपुर |
| (५) १७९२ जोधपुर | (३१) १८१८ सोजत |
| (६) १७९३ नागोर | (३२) १८१९ जोधपुर |
| (७) १७९४ जोधपुर | (३३) १८२० किशनगढ |
| (८) १७९५ सोजत | (३४) १८२१ नागोर |
| (९) १७९६ जोधपुर | (३५) १८२२ बीकानेर |
| (१०) १७९७ मेडता | (३६) १८२३ मेडता |
| (११) १७९८ किशनगढ | (३७) १८२४ नागोर |
| (१२) १७९९ जयपुर | (३८) १८२५ जोधपुर |
| (१३) १८०० जोधपुर | (३९) १८२६ मेडता |
| (१४) १८०१ मेडता | (४०) १८२७ नागोर |
| (१५) १८०२ सोजत | (४१) १८२८ जोधपुर |
| (१६) १८०३ मेडता | (४२) १८२९ किशनगढ |
| (१७) १८०४ सोजत | (४३) १८३० शाहपुरा |
| (१८) १८०५ नागोर | (४४) १८३१ सोजत |
| (१९) १८०६ मेडता | (४५) १८३२ पाली |
| (२०) १८०७ बोडावड | (४६) १८३३ जोधपुर |
| (२१) १८०८ जैतारण | (४७) १८३४ पीपाड |
| (२२) १८०९ जोधपुर | (४८) १८३५ जोधपुर |
| (२३) १८१० पीपाड | (४९) १८३६ पाली |
| (२४) १८११ भीलवाडा | (५०) १८३७ किशनगढ |
| (२५) १८१२ उदयपुर | (५१) १८३८ शाहपुरा |
| (२६) १८१३ अमररायपुर | (५२) १८३९ नागोर |

(१८४० से १८५२ तक नागोर स्थिरवास के कारण)

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७ | | ५१ थी। इसके आगे इतना और पढ़े कि<br>श्रीनारायणदासजी महाराज"<br>श्री जैतसीजी महाराज यह नाम श्रीकुशलजी महाराज के पहले चाहिये। "आपके गुरुभ्राता" इसके बीच "बडे" शब्द चाहिये। | |
| ६ | १६ | १८६८ माघकृष्णा चतुर्दशी, | १८६१ द्वितीयचेत सुद १ |
| १० | ६ | वचकला | वुचकला |
| १३ | ५ | की सीमा | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २३ | टिप्पणमे १ | रे, चवी | रे चवी, |
| २८ | ६ | निवार्ण | निर्वाण |
| ४२ | २३ | विमद्र | विभ्रम |
| ४७ | १ | न क | नरक |
| ४६ | ३ | वाठे | वाटे |
| ५० | ७ | छटे | छूटे |
| ५६ | २२ | माथ रे | माथरे |
| ६४ | ६ | फझडी | फभडी |
| ६७ | १७ | गकसवेर | नकवेमर |
| ७१ | १८ | आशय | आश्रय |
| ७२ | १२ | छटी | छूटी |
| ७८ | २१ | धासी | थासी |
| ७६ | २६ | (१६) यशोधर | (१६) अनिवृत्ति |
| " | " | (२१) मल्लि | (२१) विमल |
| " | २७ | (२२) देवार्जन | (२२) देवोपपात |
| ८२ | २६ | अवारवो | अगरचो |
| ८३ | १६ | लाल | नाल |
| " | १७ | निघटिया | विघटिया |
| " | १८ | सम्यत्क्त्व | सम्यक्त्व |
| " | १६ | शुश्रुपा | शुश्रूपा |
| ८५ | ७।८।६ | आश्रव | आस्रव |
| ८६ | ६ | पाणी | प्राणी |
| ६० | टिप्पणमे ८ | वेतव्व | वेतेव्व |
| ६४ | ११ | भाडना | माडणा |
| ६५ | १२ | थे | थो |
| ६८ | ७ | माटीणी | भाटण |
| १०० | १२ | माले | माहे |
| १०१ | ७ | ढगारो | ठगारो |
| १०१ | १८ | आवो | आवे |
| १११ | १ | न | ने |
| १११ | ७ | पावणोजी | पांवणो |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १२१ | टिप्पण मे ३ | देविय | देवय |
| ,, | ,, | पज्जुवासामी | पज्जुवासामि |
| ,, | ,, ६ | उपनयम | उपनयन |
| ,, | ,, ७ | सन्यास | सन्यास |
| १२२ | , २ | दिव | दिन |
| ,, | ,, ४ | आण्या | आव्या |
| १२४ | २ | नित्यमरण और तद्‌भवमरण की अपेक्षा भावमरण और द्रव्यमरण कहना अधिक सगत होगा। नित्यमरण तो फिर भी इस व्याख्या का विषय हो सकता है—किन्तु तद्‌भवमरण का अर्थ तो जिस भव से मरे वही भव वापिस प्राप्त करे, जैसे मनुष्य मर के फिर मनुष्य भव मे ही जन्मे। यह इस व्याख्या मे सगत नही है। द्रव्यमरण वास्तविक शब्द है जो बाह्य रूप से मरे जिसे सब जान सके कि यह मर गया। | |
| १२४ | १६ | सथरो | सथारो |
| १२५ | २१ | सखिया | सखिया |
| १३४ | २५ | तम्बू कासि | तुम्ब काष्ठ |
| १३५ | २ | न नथ ए | अन्नत्थ ए |
| ,, | ८ | जान जावे | जाव जीव |
| ,, | २८ | विरिधीक | विराधिक |
| १३६ | २ | फासु तेजीणी | फासुअ ते जाणी |
| ,, | ७ | किपल | कपिल |
| ,, | ८ | आ बिसा | आविया |
| ,, | १४ | सुरीवी | सु रिपी |
| ,, | २२ | असुरी था | आतुर थाय |
| ,, | २४ | सा जीवो | भाजिवो |
| ,, | २५ | ल्या मे | ल्यागे |
| ,, | ३० | असडी | इसडी |
| १३७ | ३ | माली | माला |
| , | ८ | साठा | सैंठा |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १३७ | १२ | रेत नारी पडी लेड | रेतनो रे पन्लिहो |
| १३७ | २० | पीलग | पनियग |
| ,, | २२ | निमोथणु | नमोत्थुण |
| ,, | २५ | वो० जीवण | छो० जावण |
| १३८ | ४ | त्रिवाधी | त्रिविध |
| ,, | ७ | आखइड | आगटी |
| ,, | ९ | असणदिक | असणादिक |
| ,, | २३ | किपल | कपिल |
| ,, | २४ | सोम | मौआ |
| ,, | २५ | वरि | घरि |
| १३९ | ४ | सोम | सौआ |
| ,, | ६ | ,, | ,, |
| ,, | १८ | ,, | ,, |
| ,, | २२ | सुरावरग | सरावग |
| , | २३ | सुरावग | ,, |
| १४५ | ४ | मोजी | म्होवी (मोटो) |
| १४९ | ४ | रठ कुड | रट्ठकूड |
| ,, | ७ | नुपजेवा | उपजावे |
| ,, | १५ | मे ठीक | महड्ढिक |
| ,, | २१ | चाडा सुकोमल वग्रही | चाडासु काम लाच ग्रही |
| १५१ | ५ | जोण | जोग |
| ,, | ६ | म्हारे अपनो | माहे ऊपना |
| ,, | ८ | अतुल | अतूल |
| ,, | ९ | पोस | पाम |
| ,, | ११ | राकाइक हे राम | एकाई कहे राम |
| , | २१ | गाठा न गाठो | गाढानगाढो |
| | २७ | साहिली | सोले ही |
| १५२ | ४ | सुपोरे | सू पो रे |
| ,, | ६ | चुपे | चूंपो |
| ,, | १२ | को इन्ही | कोइ उन्हो |
| , | २१ | भातरो | मातरो |
| ,, | २८ | चावढास केरे | चाढे सेको रे |
| १५३ | ३ | ऊख दे | ओखदी |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १५३ | १८ | चढ थाका | वेद थकी |
| ,, | २३ | प्रामव्यो | प्राभव्यो |
| ,, | २८ | फूरो | झूरो |
| १५४ | ६ | ऊपनी | ऊपनो |
| ,, | २१ | विसेरण | विसेस |
| ,, | २२ | पर्व सइ गर्भ लया | परवसे गर्भ लिया |
| १५५ | २४ | आका मित्र | आकार मात्र |
| ,, | २६ | उपीमी | ज पामी |
| १५६ | ६ | सण | उठा |
| ,, | ८ | धाम | वाय |
| ,, | ६ | सतापो सू रे | सिताबसू रे |
| ,, | १० | आम | आय |
| १५७ | ३ | मृगा | मृगो |
| ,, | ५ | इठा | इण |
| ,, | ६ | विष | विषे |
| १५७ | ७ | अघ अधर साहोसी | इसो होसी |
| ,, | ,, | माहासीह सीक | महा साहसीक |
| ,, | ८ | जीका | झीक |
| ,, | १५ | भोगवनी कली | भोगव नीकली |
| १५७ | | चाल | वलि |
| १५८ | | ,, | ,, |
| ,, | २१ | से एकी काम जे | थसे एकीका मझे |
| ,, | २४ | ने | मे |
| ,, | ३० | तिर्यन्च | तिर्यञ्च |
| १५६ | १६ | बलदयापणइ | बलदिया पणे |
| १६० | ३ | देसे | दसे |
| ,, | ८ | म्हा | महा |
| ,, | १३ | मो धर्म | सौधर्म |
| ,, | १६ | वते वहुला | वतो वहुलो |

●●

## श्रीजयध्वज प्रकाशन समिति के सदस्यो की नामावली

१ श्रीमान् प्रेमचन्दजी श्रीश्रीमाल रायपुर (मध्यप्रदेश)
२ ,, लालचन्दजी मरलेचा, रायपुरम् मद्रास
३ ,, मोहनलालजी वोहरा, अलसूर बेगलोर
४ ,, पुखराजजी लूकड चिकपेट बेगलोर
५ ,, फूलचन्दजी लूणिया चिकपेट बेगलोर
६ ,, अमोलकचन्दजी सिगी पुलिआनतोप मद्रास
७ ,, मांगीलालजी गोटावत विन्निमिल रोड बेगलोर
८ ,, रणजीतमलजी मरलेचा पल्लावरम् मद्रास
९ ,, तेजराजजी सुराणा तिरुमझिशायी मद्रास
१० ,, लालचन्दजी डागा टडियारपेट मद्रास
११ ,, भँवरलालजी गोठी, साउकार पेट मद्रास
१२ ,, रिद्धकरणजी वेताला साउकार पेट मद्रास
१३ ,, पुखराजजी वोहरा पेरम्बूर मद्रास
१४ ,, मोहनलालजी चारडिया मैलापुर मद्रास
१५ ,, भँवरलालजी विनायकिया अजीजमुल्क, मद्रास
१६ ,, गजराजजी मूथा अजीजमुल्क मद्रास
१७ ,, फूलचन्दजी खारीवाल थौजडलाइट मद्रास
१८ ,, राजमलजी मरलेचा रेड्हिल्स मद्रास
१९ ,, कपूरचन्द भाई सुतारिया साउकार पेट मद्रास
२० , सोनराजजी सिंगी रायपुर (मध्यप्रदेश)
२१ ,, फतहचन्दजी कटारिया केवलरी रोड बेगलोर
२२ ,, मांगीलालजी डूंगरवाल नगरथ पेट बेगलोर
२३ ,, पारसमलजी साखला मैसूर रोड बेगलोर
२४ , नेमीचन्दजी खीचा अलसूर बेगलोर
२५ ,, जवाहरलालजी मूथा अलसूर बेगलोर
२६ ,, केवलचन्दजी बरमेचा गोडाउनस्ट्रीट बेगलोर
२७ ,, नथमलजी सिंगी ट्रिप्लीकेन बेगलोर

२८ ,, केवलचन्दजी बाफणा आलन्दूर बेंगलोर
२६ ,, गणेशमलजी सिंगी तिरुवेल्लोर बेंगलोर
३० ,, पारसमलजी बोहरा तिरुवेल्लोर बेंगलोर
३१ ,, मोहनलालजी कोठारी विरजीपुरम् बेंगलोर
३२ ,, जैवन्तराजजी खिंवसरा नागलापुरम् (आँध्र प्रदेश)
३३ श्रीमती पिस्ताबाई साडिया (मारवाड)
३४ श्रीमान् भानीरामजी सिंगी तिरुवेल्लोर मद्रास
३५ ,, चान्दमलजी कोठारी अलसूर बेंगलोर
३६ ,, धनराजजी बोहरा अलसूर बेंगलोर
३७ ,, मिश्रीमलजी भलगट, भण्डारा महाराष्ट्र
३८ ,, जगलीमलजी भलगट भण्डारा महाराष्ट्र
३६ ,, झूमरलालजी भलगट भण्डारा महाराष्ट्र
४० ,, हस्तीमलजी वाणिगगोता मामूलपेट बेंगलोर
४१ ,, भीखमचन्दजी गादिया तिरुवेल्लोर मद्रास
४२ ,, रंगलालजी राका पट्टाभिराम मद्रास
४३ ,, प्राणजीवनलाल भाई विलेपारले बम्बई
४४ ,, रसिकलाल भाई विलेपारले बम्बई
४५ ,, शान्तिलाल भाई विलेपारले बम्बई
४६ ,, रजनीकान्त भाई विलेपारले बम्बई
४७ ,, हस्तीमलजी बोहरा आजरला रत्नागिरि
४८ , तेजराजजी धोका सौदापुर पेट
४६ ,, हीरालालजी बोहरा राबर्टसनपेट
५० ,, मिश्रीमलजी लूणिया चण्डावल (मारवाड)
५१ ,, रतनचन्दजी बोहरा साउकार पेट मद्रास
५२ ,, जवरचन्दजी बोकडिया साउकारपेट मद्रास